श्रीवर्द्धमानाय नमः ।

भाग १५ अंक ३

जैनहितैषी

चैत सं० २४४७ । अप्रैल सन् १९२१

विषय-सूची ।

१. नया सन्देश (सम्पादक) १६२–१६६
२. पण्डितगण और इतिहास (पं० नाथूराम प्रेमी) ... १६६–१६८
३. संकट-निवारण फंडका ट्रस्टडीड (बा० अजित प्रसाद) १६९–१७१
४. नयचक्र और देवसेनसूरि (पं० नाथूराम प्रेमी) ... १७०–१७७
५. महासभाके कानपुरी अधिवेशनका कच्चा चिट्ठा (बा० अजित प्रसाद) १७७–१८५
६. भगवत्कुन्दकुन्द और श्रुतसागर (पं० नाथूराम प्रेमी)... १८५–१८८
७. विविध विषय १८८–१९१

प्रार्थनाएँ ।

१ जैनहितैषी किसी स्वार्थबुद्धिसे प्रेरित होकर निजी लाभके लिये नहीं निकाला जाता है। इसके लिये समय, शक्ति और धनका जो व्यय किया जाता है वह केवल निष्पक्ष और ऊँचे विचारोंके प्रचारके लिये; अतः इसकी उन्नतिमें हमारे प्रत्येक पाठकको सहायता देनी चाहिए।

२ जिन महाशयोंको इसका कोई लेख अच्छा मालूम हो उन्हें चाहिए कि उस लेखको वे जितने मित्रोंको पढ़कर सुना सकें, अवश्य सुना दिया करें।

३ यदि कोई लेख अच्छा न मालूम हो अथवा विरुद्ध मालूम हो तो केवल उसीके कारण लेखक व सम्पादकसे द्वेषभाव धारण न करनेके लिये सविनय निवेदन है।

४ लेख भेजनेके लिये सभी सम्प्रदायके लेखकोंको आमंत्रण है।

सम्पादक ।

सम्पादक, बाबू जुगुलकिशोर मुख्तार ।

श्रीलक्ष्मीनारायण प्रेस, काशी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नियमावली ।

१ जैनहितैषीका वार्षिक मूल्य ३) तीन रुपया पेशगी है ।

२ ग्राहक वर्षके आरम्भसे किये जाते हैं और बीचमें उवें अंकसे । आधे वर्षका मल्य १॥)

३ प्रत्येक अंकका मूल्य ।) चार आने ।

४ लेख, बदलेके पत्र, समालोचनार्थ पुस्तक आदि

"बाबू जुगुलकिशोरजी मुख्तार, सरसावा (सहारनपुर)" के पास भेजना चाहिए । सिर्फ प्रबन्ध और मूल्य आदि सम्बन्धी पत्रव्यवहार इस पतेसे किया जायः—

मैनेजर—

जैन ग्रंथ-रत्नाकर कार्यालय,

हीराबाग, पो० गिरगाँव, बम्बई ।

नये नये ग्रन्थ ।

कालिदास और भवभूति ।

महाकवि कालिदासके अभिज्ञान शाकुन्तलकी और भवभूतिके उत्तररामचरितकी अपूर्व, अद्भुत और मर्मस्पर्शी समालोचना । मूल लेखक, स्वर्गीय नाटककार द्विजेन्द्रलाल राय । प्रत्येक कवि, साहित्यप्रेमी और संस्कृतज्ञोंको यह ग्रन्थ पढ़ना चाहिए । मूल्य १॥), सजिल्दका २)

साहित्य-मीमांसा ।

पूर्वीय और पाश्चात्य साहित्यकी, काव्यों और नाटकोंकी मार्मिक और तुलनात्मक पद्धतिसे की हुई आलोचना । इसमें आर्यसाहित्यकी जो महत्ता, उपकारिता और विशेषता दिखलाई गई है, उसे पढ़कर पाठक फड़क उठेंगे । हिन्दीमें इस विषयका यह सबसे पहला ग्रन्थ है । मूल्य १॥)

अरबी काव्यदर्शन ।

अरबी साहित्यका इतिहास, उसकी विशेषतायें और नामी नामी कवियोंकी कविताके नमूने । हिन्दीमें बिलकुल नई चीज । लेखक, पं० महेशप्रसाद साधु, मौलवी आलिम-फाजिल । मू० १।)

सुखदास—जार्ज ईलियटके सुप्रसिद्ध उपन्यास 'साइलस मारनर' का हिन्दी रूपान्तर । इस पुस्तकको हिन्दीके लब्ध प्रतिष्ठ उपन्यास-लेखक श्रीयुत् प्रेमचन्दजीने लिखा है । बढ़िया एण्टिक पेपर पर बड़ी ही सुन्दरतासे छपाया गया है । उपन्यास बहुत ही अच्छा और भावपूर्ण है । मूल्य ॥=)

स्वाधीनता—जान स्टुअर्ट मिलकी 'लिबर्टी'का अनुवाद । यह ग्रन्थ बहुत दिनोंसे मिलता नहीं था, इसलिये फिरसे छपाया गया है । स्वाधीनता'की इतनी अच्छी तात्विक आलोचना आपको कहीं न मिलेगी । प्रत्येक विचारशीलको यह ग्रन्थ पढ़ना चाहिए । मूल्य २) सजिल्दका २॥)

ज्ञान और कर्म—हिन्दीमें अपूर्व तात्विक ग्रन्थ । कलकत्ता हाईकोर्टके जज स्वर्गीय सर गुरुदास बन्धोपाध्यायके लिखे हुए सुप्रसिद्ध ग्रन्थका अनुवाद । इसमें मनुष्यके इहलोक और परलोक-सम्बन्धी सभी विषयोंकी बड़ी विद्वत्तापूर्ण आलोचना की गई है । बहुत बड़ा ग्रन्थ है । मूल्य ३) सजिल्दका ३॥)

जान स्टुअर्ट मिल—स्वाधीनताके मूल लेखकका अतिशय शिक्षाप्रद और पढ़ने योग्य जीवनचरित । अबकी बार यह जुदा छपाया गया है । मूल्य ॥=)

तमाखूसे हानि—पं० हनुमत्प्रसादजी वैद्यकृत । मू० ।=)

मलावरोध-चिकित्सा— ,, ,, मू० ।=)

फिजीमें भारतीय प्रतिज्ञाबद्ध-कुलीप्रथा—लेखक, एक भारतीय हृदय । मूल्य १)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः ।

पन्द्रहवाँ भाग । अंक ७

जैनहितैषी ।

चैत्र २४४९
अप्रैल १९२३

न हो पक्षपाती बतावे सुमार्ग, डरे ना किसीसे कहे सत्यवाणी ।
बने है विनोदी भले आशयोंसे, सभी जैनियोंका हितैषी 'हितैषी' ॥

नया संदेश ।

समालोचना करनेवाला जैनी नहीं !

किसी वस्तुके गुण-दोषोंपर विचार करना और उन्हें दिखलाना समालोचना कहलाता है । परीक्षा, मीमांसा और विवेचना भी उसीके नामान्तर हैं । समालोचनाके द्वारा विवेक जागृत होता, हेयोपादेयका ज्ञान बढ़ता और अन्ध श्रद्धाका नाश होता है । इसलिए सद्धर्म-प्रवर्तक और सद्विचारक जन हमेशा परीक्षा-प्रधानताका अभिनन्दन किया करते और उसे महत्त्वकी दृष्टिसे देखा करते हैं । जैनधर्ममें इस परीक्षा-प्रधानताको और भी ज्यादा महत्त्व दिया गया है और किसी भी विषयके त्याग-ग्रहणसे पहले उसकी अच्छी तरहसे जाँच पड़ताल कर लेनेकी प्रेरणा की गई है । गुण दोषोंपर विचार करनेका यह अधिकार भी सभी मनुष्योंको स्वभावसे ही प्राप्त है, चाहे वह मनुष्य छोटा हो या बड़ा और चाहे उच्चासन पर विराजमान हो या नीचे पर । जो मनुष्य किसी वस्तुको निर्माण करके उसे पब्लिकके सामने रखता है, वह अपने उस कृत्यके द्वारा इस बातकी घोषणा करता है कि प्रत्येक मनुष्य उस वस्तुके गुण-दोषोंपर विचार करे । और इसलिए पब्लिकमें रक्खी हुई किसी वस्तुपर यदि कोई मनुष्य अपनी सम्मति प्रकट करता है, उसके गुण-दोषोंको बतलाता है तो उसके इस अधिकारमें बाधा डालनेका किसीको अधिकार नहीं है । अपनी भूल और अपनी त्रुटि बहुधा अपनेको मालूम नहीं हुआ करती, उसे प्रायः दूसरे लोग ही बतलाया करते हैं । कभी कभी उन भूलों

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

और त्रुटियोंका अनुभव ऐसे लोगोंको हो जाया करता है जो ज्ञानादिकमें अपने बराबर नहीं होते और बहुत कम दर्जा रखते हैं। और यह सब आत्मशक्तियोंके विकाशका माहात्म्य है—किसीमें कोई शक्ति किसी रूपसे विकसित होती है और किसीमें कोई किसी रूपसे। ऐसा कोई भी नियम नहीं हो सकता कि पूर्वजोंके सभी कृत्य अच्छे हों, उनमें कोई त्रुटि न पाई जाती हो और गुरुओंसे कोई दोष ही न बनता हो। पूर्वजोंके कृत्य बुरे भी होते हैं और गुरुओं तथा आचार्योंसे भी दोष बना करते हैं अथवा त्रुटियाँ और भूलें हुआ करती हैं। यही वजह है कि शास्त्रोंमें अनेक पूर्वजोंके कृत्योंकी निन्दा की गई है और आचार्यों तकके लिए भी प्रायश्चित्तका विधान पाया जाता है। इसलिए चाहे कोई गुरु हो या शिष्य, पूज्य हो या पूजक और प्राचीन हो या अर्वाचीन, सभी अपने अपने कृत्यों द्वारा आलोचनाके विषय हैं और सभीके गुण-दोषोंपर विचार करनेका जनताको अधिकार है। नीतिकारोंने भी साफ लिखा है कि—

"शत्रोरपि गुणावाच्या
दोषावाच्या गुरोरपि।

अर्थात्—शत्रुके भी गुण और गुरुके भी दोष कहने—आलोचना किये जानेके योग्य होते हैं। अतः जो लोग अपना हित चाहते हैं, अन्धश्रद्धाके कूपमें गिरनेसे बचनेके इच्छुक हैं और जिन्होंने परीक्षा-प्रधानताके महत्त्वको समझा है उन्हें खूब जाँच पड़तालसे काम लेना चाहिए, किसी भी विषयके त्याग अथवा ग्रहणसे पहले उसकी अच्छी तरहसे आलोचना प्रत्यालोचना कर लेनी चाहिए और केवल 'बाबा वाक्यं प्रमाणं' के आधार पर न रहना चाहिए। यही उन्नतिमूलक शिक्षा हमें जगह जगह पर जैनशास्त्रोंमें दी गई है और ऐसे सारगर्भित उदार उपदेशोंसे जैनधर्म अबतक गौरवशाली बना हुआ है। परन्तु हमारे पाठकोंको आज यह जानकर आश्चर्य होगा कि शोलापुरके सेठ रावजी सखाराम दोशीने जैनसिद्धान्त विद्यालय मोरेनाके वार्षिकोत्सव पर सभापतिकी हैसियतसे भाषण देते हुए, उक्त शिक्षासे प्रतिकूल, जैनसमाजको हालमें एक नया सन्देश सुनाया है; और वह संक्षेपमें यह है कि जो विद्वान् लोग जैनग्रन्थोंकी समालोचना करते हैं—उनके गुण-दोषोंको प्रकट करते हैं—वे जैनी नहीं हैं! इस सम्बन्धमें आपके कुछ खास वाक्य इस प्रकार हैं:—

"अब थोड़े दिनोंसे कुछ पढ़े-लिखे लोगोंमें एक तरहका भ्रम होकर वे परम पूज्य आचार्योंके ग्रन्थोंकी समालोचना कर रहे हैं। जो जैनी हैं वे आचार्योंकी समालोचना करते हैं, यह वाक्य कहनेमें विपरीतता दिखाई देती है। आचार्योंकी समालोचना करनेवाला जैनी कैसे कहला सकता है?"

समझमें नहीं आता कि जैनी होने और आचार्योंकी समालोचना करनेमें परस्पर क्या विपरीतता है। क्या सेठ साहबका इससे यह अभिप्राय है कि, जो स्वयं आचार्य नहीं वह आचार्यके गुण-दोषोंका विचार नहीं कर सकता अथवा उसे वैसा करनेका अधिकार नहीं? यदि ऐसा है तो सेठ साहबको यह भी कहना होगा कि जो आप्त नहीं है, अनीश्वर है उसे आप्त भगवान्‌की, ईश्वर-परमात्माकी मीमांसा और परीक्षा करनेका भी कोई अधिकार नहीं है, न वह कर सकता है। और तब आपको स्वामी समन्तभद्र और

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विद्यानन्दादि जैसे महान् आचार्योंको भी कलङ्कित करना होगा और उन्हें अजैन ठहराना पड़ेगा; क्योंकि स्वयं आप्त, ईश्वर या परमात्माके पदपर प्रतिष्ठित न होते हुए भी उन्होंने आप्त-परमात्माकी मीमांसा और परीक्षातक कर डालनेका साहस किया है। स्वामी समन्तभद्रने तो भगवान् महावीर स्वामीकी भी परीक्षा कर डाली है और यहाँतक लिखा है कि देवोंका आगमन, आकाशमें गमन और छत्र चँवरादि विभूतियोंकी वजहसे मैं आपको महान्-पूज्य नहीं मानता, ये बातें तो मायावियों—इन्द्रजालियोंमें भी पाई जाती हैं*। क्या सेठ साहब स्वामी समन्तभद्र जैसे महान् आचार्योंपर इस प्रकारका दोष लगाने और उन्हें अजैन ठहरानेके लिये तय्यार हैं? यदि नहीं तो आपको यह मानना होगा कि नीचे दर्जेवाला भी ऊँचे दर्जेवालेकी परीक्षा और उसके गुण-दोषोंकी जाँच, अपनी शक्तिके अनुसार, कर सकता है। और इसलिए श्रावकोंका मुनियों तथा आचार्योंके कुछ कृत्योंकी समालोचना करना, उनके गुणदोष जतलाना, अधिकारकी दृष्टिसे कोई अनुचित कार्य नहीं है। इसके सिवा हम सेठसाहबसे पूछते हैं कि क्या साधु सम्प्रदायमें कपट-वेषधारी, द्रव्यलिंगी, शिथिलाचारी अल्पज्ञानी, और अनेक प्रकारके दोषोंको लगानेवाले साधु तथा आचार्य नहीं हुए हैं?† क्या आचार्योंमें मठाधिपति (गद्दीनशीन) भट्टारक लोग शामिल नहीं हैं? क्या ऐसे आचार्योंके बनवाये हुए सैकड़ों ग्रन्थ जैनसमाजमें प्रचलित नहीं हैं? क्या इन ग्रन्थोंमें श्रमणाभास भट्टारकोंने अपनेको परम आचार्य और मुनीन्द्रतक नहीं लिखा? क्या बहुतसे ग्रन्थोंमें अज्ञान, कषाय और भूल आदिके कारण पीछेसे कुछ मिलावट नहीं हुई? क्या जिनसेन त्रिवर्णाचार और कुन्दकुन्दश्रावकाचार जैसे कुछ ग्रन्थ बड़े आचार्योंके नामसे जाली बने हुए नहीं? और क्या अनेक विषयोंमें अज्ञानादि किसी भी कारणसे, बहुतसे आचार्योंमें परस्पर मतभेद नहीं रहा है? यदि यह सब कुछ हुआ है तो फिर सत्यकी जाँचके लिए ग्रन्थकी परीक्षा, मीमांसा और समालोचना आदिके सिवा दूसरा और कौनसा अच्छा साधन है जिससे यथेष्ट लाभ उठाया जा सके? शायद इसी स्थितिका अनुभव करके किसी कविने यह वाक्य कहा है—

जिनमत महल मनोज्ञ अति
कलियुग छादित पन्थ।
समझ बूझके परखियो।
चर्चा निर्णय ग्रन्थ॥

इस वाक्यमें साफ़ तौरसे हमें जैन ग्रन्थोंकी अच्छी तरहसे परीक्षा और समालोचना करके उनके विषयको ग्रहण करनेकी सलाह दी गई है और उसका कारण यह बतलाया गया है कि जैनधर्मका वास्तविक मार्ग आजकल आच्छादित हो रहा है—कलियुगने उसमें तरह तरहके काँटे और झाड़ खड़े कर दिये हैं जिनको साफ करते चलनेकी जरूरत है। पं० आशाधरजीने 'अनगारधर्मामृत' की टीकामें किसी विद्वान्का जो निम्नलिखित वाक्य उद्धृत किया है वह भी ध्यानमें रखे जानेके योग्य है—

पण्डितैर्भ्रष्ट चारित्रैर्वठरैश्च तपोधनैः।
शासनं जिनचन्द्रस्य निर्मलं मालिनी कृतम्॥

इस बातमें सखेद यह बतलाया गया है कि जिनेन्द्र भगवान्के निर्मल शासन-

* देवागमनभोयान चामरादि विभूतयः। मायाविष्वपि दृश्यते नातस्त्वमसि नो महान्॥—आप्तमीमांसा।

† ऐसे ही साधुओंको लक्ष्य करके 'सज्जनचित्तवल्लभ' आदि ग्रन्थोंमें उनकी कड़ी आलोचना की गई है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

को भ्रष्टचारित्र पण्डितों और धूर्त मुनियों-ने मलीन कर दिया है। और इससे भी यही ध्वनित होता है कि हमें जैनग्रन्थोंके विषयको बड़ी सावधानीके साथ, खूब परीक्षा और समालोचनाके बाद, ग्रहण करना चाहिए; क्योंकि उक्त महात्माओं-की कृपासे जैनशासनका निर्मल रूप बहुत कुछ मैला हो रहा है। ऐसी हालतमें मालूम नहीं होता कि सेठसाहब ग्रन्थोंकी परीक्षाओं और समालोचनाओंसे क्यों इतना घबराते हैं और क्यों उसका दर्वाजा बन्द करनेकी फिकरमें हैं। क्या आप जिनसेन त्रिवर्णाचारके कर्ता जैसे आचार्यों-को 'परमपूज्य' आचार्य समझते हैं और ऐसे ही आचार्योंकी मानरक्षाके लिए आपका यह सब प्रयत्न है? यदि ऐसा है तो हमें कहना होगा कि आप बड़ी भारी भूलमें हैं। अब वह जमाना नहीं रहा और न लोग इतने मूर्ख हैं जो ऐसे जाली ग्रन्थोंको भी माननेके लिए तैयार हो जायँ। सहृदय विद्वत्समाजमें अब ऐसे ग्रन्थलेखक कोई आदर नहीं पा सकते और न स्वामी समन्तभद्र जैसे महा-प्रतिभाशाली और अपूर्व मौलिक ग्रन्थोंके निर्माणकर्ता आचार्योंका आदर तथा गौरव कभी कम हो सकता है। इसलिए समालोचनाओंसे घबरानेकी ज़रूरत नहीं। ज़रूरत है समालोचनामें कही हुई किसी अन्यथा बातको प्रेमके साथ सम-झानेकी, जिससे उसका स्पष्टीकरण हो सके। समालोचनाओंसे दोषोंका संशो-धन और भ्रमोंका पृथक्करण हुआ करता है और उससे यथार्थ वस्तुस्थितिको समझकर श्रद्धानके निर्मल बनानेमें भी बहुत बड़ी सहायता मिलती है। इसलिए सत्यके उपासकों द्वारा सद्भावसे लिखी हुई समालोचनाएँ सदा ही अभिनन्दनीय होती हैं। जो लोग ऐसी समालोचनाओं-से घबराते हैं उनकी जैनधर्मविषयक श्रद्धा, हमारी रायमें बहुत ही कमज़ोर है और उनकी दशा उस मनुष्य जैसी है जिसे अपने हाथमें प्राप्त हुए सुवर्णपर उसके शुद्ध सुवर्ण होनेका विश्वास नहीं होता और इसलिए वह उसे तपाने आदिकी परीक्षामें देते हुए घबराता है और यही कहता है कि तपानेकी क्या ज़रूरत है, तपानेसे सोनेका अपमान होता है! और उसको आगमें डालनेवाला सोनेका प्रेमी कैसे कहला सकता है! जो लोग शुद्ध सुवर्णके परीक्षक नहीं होते और अपने खोट मिले हुए सुवर्णको ही शुद्ध सुवर्ण-की दृष्टिसे देखते हैं और उसीसे प्रेम रखते हैं, उनके सुवर्णमें कभी किसी परी-क्षक द्वारा खोट निकाले जानेपर उनकी प्रायः ऐसी ही दशा हुआ करती है। ठीक यही दशा इस समय हमारे सेठसाहबकी जान पड़ती है। उन्हें अपने सुवर्ण (श्रद्धा-स्पद साहित्य) के खोट मिश्रित करार दिये जानेका भय है और उसके संशोधन करानेमें सुवर्णका वज़न कम हो जानेका डर है। इसी लिए आप ऐसे ऐसे नवीन संदेश सुनाकर—समालोचकोंको अजैनी करार देकर—परीक्षाका दर्वाज़ा बन्द कराना चाहते हैं और शायद फिरसे अन्धश्रद्धाका साम्राज्य स्थापित करनेकी फिकरमें हैं!

आपने अपने सन्देशमें एक बात यह भी कही है कि हमें किसी सभाके सभा-पति, किसी पत्रके सम्पादक और किसी स्थानके पण्डितकी बातोंपर ध्यान नहीं देना चाहिए और न उन्हें प्रमाण मानना चाहिए; बल्कि 'गुरूणां अनुगमनं' के सिद्धान्तपर चलना चाहिए। अर्थात्, हमारे गुरुओंने, पूर्वाचार्योंने जो उपदेश दिया है उसीके अनुसार हमें चलना चाहिए। यह सामान्य सिद्धान्त कहने

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सुननेमें जितना सुगम और रुचिकर मालूम होता है, अनुष्ठानमें उतना सुगम और रुचिकर नहीं है। बहुतसे गुरुओंके वचनोंमें परस्पर भेद पाया जाता है—हर एक विषयमें सब आचार्योंकी एक राय नहीं है। जब पूर्वाचार्योंके परस्पर विभिन्न शासन और मत सामने आते हैं तब अच्छे अच्छे आज्ञाप्रधानियोंकी बुद्धि चकरा जाती है और वे 'किं कर्तव्य विमूढ़' हो जाते हैं। उस समय परीक्षा-प्रधानता और अपने घरकी अकलसे काम लेनेसे ही काम चल सकता है। अथवा यों कहिये कि ऐसे परीक्षाप्रधानी और खोजी विद्वानोंकी बातोंपर ध्यान देनेसे ही कुछ नतीजा निकल सकता है, केवल 'गुरूणां अनुगमनं' के सिद्धान्तपर बैठे रहनेसे नहीं। हम सेठ साहबसे पूछते हैं कि, (१) एक आचार्य सीताको रावणकी पुत्री और दूसरे जनककी पुत्री बतलाते हैं, (२) जम्बू स्वामीका समाधि-स्थान एक मथुरामें, दूसरे विपुलाचल पर्वतपर और तीसरे कोटिकपुरमें ठहराते हैं;(३) भद्रबाहुके समाधि-स्थानको एक श्रवण बेल्गोलके चन्द्रगिरि पर्वतपर और दूसरे उज्जयिनीमें बतलाते हैं;(४) श्रावकोंके अष्ट मूल गुणोंके निरूपण करनेमें एक आचार्य कुछ कहते हैं, दूसरे कुछ और तीसरे चौथे कुछ और ही; (५) कुछ आचार्य छठी प्रतिमाको 'दिवामैथुन त्याग' बतलाते हैं और कुछ 'रात्रिभोजन विरति';(६) कोई गुरु रात्रि-भोजनविरतिको छठा अणुव्रत करार देते हैं और कोई नहीं;(७) गुणव्रत और शिक्षाव्रतके कथनमें भी आचार्योंमें परस्पर मतभेद है*; (८) कितने ही आचार्य ब्रह्माणुव्रतीके लिए वेश्याका निषेध करते हैं और कुछ सोमदेव जैसे आचार्य उसका विधान करते हैं*। इसी तरहके और भी सैकड़ों मतभेद हैं; इनमेंसे प्रत्येक विषयमें कौनसे गुरुकी बात मानी जाय और कौनसे की नहीं? जिसकी बात न मानी जाय उसकी आज्ञा भङ्ग करनेका दोष लगेगा या नहीं? और तब क्या उक्त 'गुरूणांमनुगमनं' के सिद्धान्तमें बाधा नहीं आवेगी? क्या आप उस गुरुको गुरुत्वसे ही च्युत कर देंगे? परीक्षा, जाँच-पड़ताल और युक्तिवादको छोड़कर, आपके पास ऐसी कौनसी गारंटी है जिससे एक गुरुकी बात मानी जाय और दूसरेकी नहीं? कृपाकर यह तो बतलाइये कि जितने आचार्यों, भट्टारकों आदि गुरुओंके वचन (शास्त्र) समाजमें इस समय प्रचलित हैं, अथवा सुने जाते हैं उनमेंसे आपको कौन कौनसे गुरुओंके वचन मान्य हैं, जिससे आपके 'गुरूणां अनुगमनं' सिद्धान्तका कुछ फलितार्थ तो निकले—लोगोंको यह तो मालूम हो जाय कि आप अमुक अमुक गुरुओं, ग्रन्थकारोंकी सभी बातोंको आँख बन्द कर मान लेनेका परामर्श दे रहे हैं। साथ ही यह भी बतलाइये कि यदि उनके कथनोंमें भी परस्पर विरोध पाया जाय तो फिर आप उनमेंसे कौनसेको गुरुत्वसे च्युत करेंगे और क्योंकर। केवल एक सामान्य वाक्य कह देनेसे कोई नतीजा नहीं निकल सकता। भले ही साक्षात् गुरुओंके सम्बन्धमें आपके इस सिद्धान्त वाक्यका कुछ अच्छा उपयोग हो सके, परन्तु परम्परा गुरुओं और विभिन्न मतोंके धारक बहुगुरुओंके सम्बन्धमें वह बिलकुल निरापद मालूम

* देखो हमारे शासनभेद सम्बन्धी लेख, जैनहितैषी भाग १४ अंक १,२-३, ७-८-९।

* वधूवित्तस्त्रियौ मुक्त्वा सर्वत्रान्यत्रतज्ञने। मातास्वसातनूजेति मतिर्ब्रह्म गृहाश्रमे॥ (यशस्तिलक)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नहीं होता और न सर्वथा उसीके आधार पर रहा जा सकता है—ख़ासकर इस कलिकालमें जब कि भ्रष्टचरित्र पण्डितों और धूर्त मुनियोंके द्वारा जैनशासन बहुत कुछ मैला (मलिन) किया जा चुका है।

आजकल हिन्दू साधुओंमें कितना अत्याचार बढ़ा हुआ है और वे अपने साधुधर्मसे कितने पतित हो रहे हैं! उनकी चरित्रशुद्धि और उत्थानके लिए अथवा दूसरोंको सन्मार्ग दिखलानेके लिए, क्या किसी गृहस्थको यह समझकर उनके दोषोंकी आलोचना नहीं करनी चाहिए कि वे साधु हैं और हम गृहस्थ, हमें गुरुजनोंकी समालोचना करनेका अधिकार नहीं? और क्या ऐसी समालोचना करनेवाला हिन्दू नहीं रहेगा? यदि सेठ साहब ऐसा कुछ नहीं मानते, बल्कि देश, धर्म और समाजकी उन्नतिके लिए वैसी समालोचनाओंका होना आवश्यक समझते हैं तो उन्हें जैन-समालोचकोंको भी उसी दृष्टिसे देखना चाहिए। कोई वजह नहीं है कि क्यों त्रुटिपूर्ण साधुओं और त्रुटिपूर्ण ग्रन्थोंकी, सम्यक् आलोचना द्वारा, त्रुटियाँ दिखलाकर जनताको उनसे सावधान न किया जाय और क्यों इस तरहपर उन्नतिके मार्गको अधिकाधिक प्रशस्त बनानेका यत्न न किया जाय।

आशा है, वस्तुस्थितिका दिग्दर्शन करानेवाले हमारे इस नोटपर सेठ साहब शान्तिके साथ विचार करेंगे और बन सकेगा तो, संयत* भाषामें, योग्य उत्तरसे भी कृतार्थ करनेकी कृपा करेंगे।

सरसावा। वैशाख कृष्ण ६ सं १९७८।

* ऐसे लेखोंपर यहाँ प्रायः कोई विचार नहीं किया जाता जो असंयत, असभ्य अथवा द्वेषपूर्ण भाषामें लिखे हों।—सम्पादक।

पण्डितगण और इतिहास।

[लेखक—पण्डित नाथूरामजी प्रेमी]

इधर कुछ पण्डित महाशयोंकी कृपादृष्टि हम लोगोंके पीछे खुफिया पुलिसके समान रहने लगी है। हम लोगोंकी प्रत्येक हरकतपर और प्रत्येक बातपर उन्हें सन्देह होने लगा है। दुर्भाग्यसे हम लोगोंका नाम 'बाबू-दल' के रजिस्टरमें लिख लिया गया है और पण्डितशाही इस दलको उसी भयभीत दृष्टिसे देखती है जिससे 'नौकरशाही' असहयोगवादियोंको देखती है। उसे भय हो गया है कि हम लोगोंकी प्रत्येक बात और प्रत्येक चर्चा जैनधर्मको मिट्टीमें मिला देनेवाली है, इसलिए वह हमसे सदा सावधान रहना चाहती है। इस निर्मूल भयने उसकी मतिको गुसाईं तुलसीदासजीके शब्दोंमें 'कीट-भृंगकी नाईं' बना दिया है। यही कारण है जो उसे हम लोगोंके इतिहास-सम्बन्धी लेखोंमें भी उक्त भय मुँह फाड़े हुए नज़र आने लगा है। हमें उसकी इस अवस्थापर बड़ी दया आती है; परन्तु ऐसा कोई उपाय नहीं सूझता जिससे वह इस भयसे मुक्त हो जाय।

पण्डित महाशयोंको यह हम कैसे समझावें कि इतिहास बहुत ही कठोर और निर्मम सत्यका उपासक है। वह न वेदशास्त्रोंका लिहाज करता है और न परम्परासे चले आये हुए विश्वासोंका। वह उसी ओरको अपना मस्तक झुकाता है जिस ओर 'सत्यदेव' अपने निर्विकार-रूपमें विराजमान दिखलाई देते हैं। यह बात भी उनके गलेमें कैसे उतारी जाय कि इतिहासके लेखक या खोज करनेवाले सर्वज्ञ नहीं होते और इसलिए उनसे भूलें होना कुछ अस्वाभाविक बात नहीं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

है। उनके अनुमानोंके सत्य होनेकी जितनी सम्भावना होती है, असत्य और निर्मूल होनेकी भी उससे कम नहीं होती। बुद्धिकी कमी और गहरा अध्ययन न होनेके कारण उनके प्रमाण भी कभी कभी अप्रमाण ठहर जाते हैं। परन्तु यह सब कुछ होनेपर भी इतिहास-लेखकोंपर यह अपराध नहीं लगाया जा सकता कि उनकी दयानत—उनका अभिप्राय अच्छा नहीं है। जो उनसे अधिक अध्ययनशील और विद्वान् होते हैं, वे उनकी भूलें बतलाते हैं और वे उन्हें सादर स्वीकार कर लेते हैं। भूलें होती हैं, इस कारण किसीको इतिहासकी चर्चा ही न करनी चाहिए, ऐसा नादिरशाही हुक्म निकाला भी जाय तो उसका अर्थ यही होगा कि हमें इतिहासकी कोई आवश्यकता ही नहीं है।

पण्डितजनोंको यह समझा देना भी हमारी शक्तिसे परे है कि परम्परासे चले आये हुए सभी विश्वास, सभी किंवदन्तियाँ और कथा-कहानियाँ इतिहास नहीं हैं। इनके भीतर इतिहासका अंश हो सकता है; परन्तु वे सर्वांशमें सत्य नहीं मानी जा सकतीं। और जबतक वे यह नहीं समझ लेते हैं, तबतक उनका भय दूर हो भी कैसे सकता है?

दुर्भाग्यसे जैनधर्म और जैनसाहित्यका इतिहास अभीतक बहुत ही अन्धकारमें पड़ा हुआ है। ज्ञानके इस बड़े भारी आवश्यक साधनको खड़ा करनेके लिए अभीतक जो कुछ प्रयत्न हुए हैं वे प्रायः न होनेके ही बराबर हैं। उचित तो यह था कि ये पण्डित लोग—जिन्हें जैनसमाजने बड़ी बड़ी आशायें बाँधकर तैयार किया है—इस साधनके तैयार करनेमें सबसे अधिक हाथ बँटाते और अपने परिश्रम तथा अध्ययनशीलताके द्वारा इस अन्धकारपूर्ण मार्गको प्रकाशित करते। सो न करके उलटे ये पण्डित उन लोगोंके मार्गमें रोड़े अटकाते हैं जो अपनी थोड़ीसी शक्ति और योग्यताके बलपर जो कुछ बन सकता है, शुद्ध भावनाओंसे किया करते हैं। अपनी उक्त 'कीट-भृङ्गकी नाईं' मतिके कारण इन्हें इतिहासके इस शुद्ध और सरल मार्गमें भी वही 'भयका भूत' दिखलाई देता है और ये बीच बीचमें चीख उठते हैं कि "देखो ये बड़े चालाक हैं, तुम्हारी आँखोंमें धूल झोंक देंगे, ये श्वेताम्बरोंसे विशेष प्रेम रखते हैं, इनकी बातोंपर विश्वास मत करो।" इत्यादि।

पण्डितोंके इस भयको दूर करनेका केवल एक ही उपाय हो सकता है और वह यह कि हम लोग इस कामको करना छोड़ दें और इनके धर्ममार्गको निष्कण्टक बना दें। परन्तु दुःख तो यह है कि अभीतक ये बेचारे इतिहासका 'श्रीगणेश' भी नहीं जानते हैं और इतिहासकी एक पंक्ति और एक वाक्यके लिखनेके लिए कितना परिश्रम और कितनी ढूँढ़-खोज करनी पड़ती है, उसकी इन्हें कल्पना भी नहीं है। गत बीस वर्षोंमें दिगम्बर जैनसाहित्यके इतिहासके सम्बन्धमें जो कुछ थोड़ा बहुत काम हुआ है, उसमें इनका शायद ही कहीं कोई हाथ हो। और आगे भी हमें यह आशा नहीं है कि इतिहासके मार्गमें धींगाधींगी करनेके सिवा इनके द्वारा कोई वास्तविक काम होगा।

अभी अभी गन्धहस्तिमहाभाष्य, सिद्धसेन दिवाकर, सूक्तमुक्तावली और नयचक्र आदिके सम्बन्धमें कुछ पण्डित महाशयोंके द्वारा जिस ढंग और जिस शैलीसे लिखे हुए उत्तर लेख प्रकाशित हुए हैं, उन्हें पढ़कर निष्पक्ष पाठक यह अच्छी तरह जान लेंगे कि उनमें इतिहास-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चर्चा करनेकी कितनी योग्यता है और हम लोगोंके इतिहाससम्बन्धी प्रयत्नोंकी ओर वे कैसी भीत और सशंक दृष्टिसे देखते हैं।

जो लोग इतिहास और पुरातत्व सम्बन्धी पत्रोंको पढ़ते हैं, वे जानते हैं कि एक इतिहासज्ञकी भूलको दूसरा इतिहासज्ञ कैसी सभ्यता, शिष्टता और भाषा-समितिकी रक्षा करता हुआ प्रकट करता है; और फिर उसका विरोध करनेवाला अपना दूसरा मत कैसी अच्छी शैलीसे स्थापित करता है। उसमें न कटाक्षोंका काम पड़ता है और न कटूक्तियोंका, और इस तरह इतिहासके बड़ेसे बड़े गूढ़ प्रश्न हल हो जाते हैं। परन्तु यहाँ तो यह हाल है कि हम लोगोंने कोई नई बात लिखी और पण्डित महाशयोंको उसमें हमारी दुरभिसन्धिकी—चालाकीकी—बू आई!

उक्त विषय, जिन पर पण्डित महाशयोंके विरोधी लेख निकले हैं, इतने महत्वके और मनोरंजक हैं कि उनपर बड़े अच्छे ढंगसे बरसों चर्चा चल सकती थी। उनमें कटूक्तियों और व्यक्तिगत आक्षेपोंके लिए तो कोई स्थान ही नहीं था। जो बातें हम लोगोंने लिखी हैं, वे यदि भ्रमयुक्त हैं तो उनके विरुद्ध प्रमाणोंके पाते ही हम उन्हें मान लेते; और यदि हम दुराग्रहसे या हठसे न मानते, तो कमसे कम जो विचारशील हैं उन्हें तो मानना ही पड़ता। सो न करके पण्डित महाशयोंने प्रतिपाद्य विषयोंकी अपेक्षा स्वयं हम लोगोंपर ही विशेष कृपा की है और इस तरह इतिहास जैसे आनन्दप्रद विषयको अतिशय कटुक्लेश कर बना दिया है। पण्डित वंशीधरजी शास्त्रीने तो बाबू जुगलकिशोरजी पर यहाँतक इलज़ाम लगाया है कि वे गन्धहस्तिमहाभाष्यके अस्तित्वका लोप इस कारण कर रहे हैं कि "कहीं ऐसा न हो कि अधिक प्राचीन एक महाग्रन्थ उपलब्ध हो जाय और उससे उपलब्ध आगमोंकी जड़ और भी पक्की हो जाय। नास्तिकोंका जो डर है उसका एक मात्र यही कारण है और इसलिये उक्त ग्रन्थराजकी खोजमें लगनेसे लोगोंको विमुख करनेका प्रयत्न किया जा रहा है।" धन्य है इस पाण्डित्यको और धन्य है उस मस्तिष्कको जिसमेंसे ऐसे पवित्र विचार निकलते हैं!

उक्त उत्तर-लेखोंको पढ़कर यह इच्छा नहीं होती कि उनके प्रतिवादमें कुछ लिखा जाय। लिखनेमें हम लोग पेश भी नहीं पा सकते। परन्तु फिर भी यह आवश्यक प्रतीत होता है कि कमसे कम उन बातोंका प्रत्युत्तर अवश्य दे दिया जाय, जो केवल इतिहाससे सम्बन्ध रखती हैं और जिनके कारण लोग भ्रममें पड़ सकते हैं।

इस अङ्कमें मैंने 'नयचक्र' सम्बन्धी लेखका उत्तर दे दिया है। अन्यान्य लेखोंका उत्तर भी यथावकाश देनेका प्रयत्न किया जायगा।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

संकटनिवारण फंडका ट्रस्टडीड।

[सेठी अर्जुनलालजीके नज़रबन्द किये जानेके समय ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजीकी प्रेरणासे उक्त नामका जो फण्ड खोला गया था, उसका कुछ रुपया बाबू अजितप्रसाद साहब वकील हाई कोर्ट लखनऊके पास जमा हुआ था, जिसका वे हिसाब प्रकाशित करते रहे हैं। हालमें बाबू साहबने, अपने सिरका बोझा हलका करनेके लिए, उक्त फण्डकी रकमपर सूद लगाकर उसे 'ट्रेडिंग ऐण्ड बैंकिंग हाउस लखनऊ' में तीन व्यक्तियोंके नामसे सूदपर जमा करा दिया है और साथ ही, उसका एक ट्रस्ट डीड लिखकर उसकी रजिस्टरी भी करा दी है। ट्रस्ट डीड (Trust deed) की एक नक़ल बाबू साहबने जैनहितैषीमें प्रकाशित करनेके लिए हमारे पास भेजी है जिसे हम अपने पाठकोंके अवलोकनार्थ नीचे प्रकट करते हैं—सम्पादक।]

सर्वसाधारण जनता और विशेष करके जैन जनताको विदित हो कि श्रीमान् जैनधर्मभूषण ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजीके उपदेशसे जैन जनतामें पण्डित अर्जुनलाल सेठी बी० ए० को सन् १९१४ में नज़रबन्द किये जानेपर एक कोष सङ्कट निवारण फण्डके नामसे स्थापित किया था। कुछ रुपया उस फण्डका मेरे पास आता रहा और जमाख़र्च होता रहा, जिसका हिसाब मैं जैन गज़ट और जैनमित्र समाचारपत्रोंमें प्रकाशित करता रहा। मई १९२० में मेरे पास १२०४-९-३ थे (जैनमित्र मिती आषाढ़ सुदी १५ से २४४६)। एक सालके क़रीब हो चुका, किन्तु जैन जनताने इस विषयमें अभीतक कुछ निर्णय नहीं किया। अतः इस भारसे हलके होनेके हेतुमें इस विश्वासपत्र (Deed of Trust) द्वारा, एक विश्वास कोष (Trust) स्थापित करता हूँ, कि ऊपरकी रक़ममें एक सालका ब्याज दर ॥) सैंकड़ा जोड़कर १२७६-६-३ एक हज़ार, दो सौ छिहत्तर रुपये, नौ आने, तीन पाई, (जिसको मैंने 'ट्रेडिंग ऐण्ड बैंकिंग हाउस' लखनऊमें ब्याजपर जमा कर दिया है)* जैन जनताके उपकारार्थ जमा रहेगी। चाहे इस ही बैंकमें चाहे कहीं और--और इसके ब्याज अथवा यदि आवश्यकता हो, तो मूलसे, जैन जनताका यथोचित उपकार होता रहेगा।

इस कोषके प्रबन्धक (Trustees) श्रीमान् जैनधर्म-भूषण ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी, पण्डित नाथूराम प्रेमी बम्बई, पण्डित जुगुलकिशोरजी सरसावा, ज़िला सहारनपुर, श्रीयुत ज्योतीप्रसाद, सम्पादक जैनप्रदीप, देवबन्द और मैं अजितप्रसाद रहेंगे। प्रबन्धक बहुसम्मतिसे इस कोषके उपयोगार्थ नियम बनावें। मैं इस विश्वासपत्रको यथाशक्ति बदल (Modify) वा खण्डित (Cancel) कर सकूँगा। और मेरे देहान्तपर अन्य प्रबन्धक ऐसा ही बहुसम्मतिसे कर सकेंगे।

अजितप्रसाद
(Sd) Ajit Prasad
वकील हाईकोर्ट, लखनऊ।

(Sd) Witness
Gokul Chand Rai
Vakil
22-3-2

Witness
(Sd) Jaswant Rai
Shama
22-3-2

Registerd as No. 199 in Book iv Vol. 293. pp. 97 &98 on 30.3.21.

* इस रुपएकी रसीद नं० २५० है जो श्रीमान् ब्रह्मचारी शीतलप्रसाद, अजितप्रसाद और पण्डित जुगलकिशोरके नाम है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नयचक्र और देवसेनसूरि।

(ले०—श्रीयुत् पं० नाथूरामजी प्रेमी।)

माणिकचन्द्र ग्रन्थमालाके १६ वें ग्रन्थ 'नयचक्र संग्रह' के भूमिका-स्वरूप मैंने एक लेख लिखा था। उसमें मैंने यह सिद्ध किया था कि श्लोकवार्तिकमें विद्यानन्दस्वामीने जिस नयचक्रका उल्लेख किया है, वह नयचक्र देवसेनसूरिके इस नयचक्रसे कोई जुदा ग्रन्थ होना चाहिए। क्योंकि विद्यानन्दस्वामी देवसेनसूरिसे पहले हुए हैं, अतएव वे देवसेनके नयचक्रका उल्लेख नहीं कर सकते। श्वेताम्बर सम्प्रदायके मल्लवादि आचार्यका बनाया हुआ भी एक 'नयचक्र' नामका ग्रन्थ है। वह श्लोकवार्तिकसे पहलेका बना हुआ है। सम्भव है कि विद्यानन्दस्वामीने उसीका उल्लेख किया हो। अथवा "यह भी सम्भव है कि देवसेनके अतिरिक्त अन्य किसी दिगम्बराचार्य्यका भी कोई नयचक्र हो और विद्यानन्द स्वामीने उसीका उल्लेख किया हो।" इन वाक्योंसे विचारशील पाठक समझ सकते हैं कि मुझे यह सिद्ध करनेका जरा भी आग्रह नहीं है कि मैं उस नयचक्रको श्वेताम्बराचार्यकृत ही सिद्ध करूँ। मुझे एक बात मालूम थी कि मल्लवादिका भी एक नयचक्र है, अतएव उसका उल्लेख कर दिया था कि शायद उससे इस प्रश्नके हल करनेमें कुछ सहायता मिल जाय कि श्लोकवार्तिकोल्लिखित नयचक्र दरअसल कौनसा ग्रन्थ है। परन्तु हमारे पण्डित महाशयोंको यह बात कैसे सहन हो सकती थी कि मैं एक श्वेताम्बराचार्यके ग्रन्थका उल्लेख कर जाऊँ और वे उसका प्रतिवाद न करें। बस, मुझपर सदयहृदय होकर कई धुरन्धर पण्डितोंने एक साथ आक्रमण कर दिया है। इस आक्रमणमें मेरे लिए जो इस तरहके कृपावाक्य लिखे हैं कि—'प्रेमीजीने जनताकी आँखोंमें धूल झोंकनेका प्रयास किया है।' 'प्रेमीजीको श्वेताम्बरोंसे अधिक प्रेम है।' उनका तो मैं क्या उत्तर दूँ। मेरे लेखोंके पढ़नेवाले विचारशील पाठक स्वयं इनका उत्तर दे लेंगे। परन्तु कुछ बातें ऐसी हैं कि उनका उत्तर दे देना आवश्यक प्रतीत होता है।

१—पं० पन्नालालजी सोनीका कथन है कि देवसेनसूरिने अपना 'दर्शनसार' वि० संवत् ९०९ में बनाया है, ९९० में नहीं। परन्तु वास्तवमें यह उनकी भूल है। दर्शनसारमें माथुरसंघकी उत्पत्तिका समय वि० सं० ९५३ लिखा है (गाथा ४०)। यदि दर्शनसार ९०९ में बना होता तो उसमें ९५३ में होनेवाले माथुरसंघकी उत्पत्ति कैसे लिखी जाती? दर्शनसारकी वह विवादग्रस्त गाथा इस प्रकार है:—

रइओ दंसणसारो हारो
भव्वाण णवसए णवए।
सिरिपासणाहगेहे सुविसुद्धे
माहसुद्धदसमीए ॥५०॥

दर्शनसारकी पं० शिवजीलाल कृत एक भाषावचनिका है। उसमें भी इस गाथाका अर्थ यही किया गया है कि वि० संवत् ९९० में यह ग्रन्थ रचा गया। 'णवसए णवए' की छाया 'नवशते नवके' न करके 'नवशते नवतौ' करनेसे यह अर्थ ठीक बैठ जाता है। यदि 'नवति' का सप्तम्यन्त प्राकृतरूप 'णवए' नहीं बनता तो मूल पाठ 'णवदीए' या 'णवईए' होगा। दो चार प्राचीय प्रतियोंके देखनेसे इसका निश्चय हो जायगा*। परन्तु

* आरा जैनसिद्धान्त भवनकी एक प्रतिमें 'णवसए णउए' ऐसा पाठ है जो नौ सो नब्बेका ही वाचक मालूम होता है। 'णवदीए' और 'णवईए' ये दोनों पाठ यहाँ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

यह बिलकुल स्पष्ट है कि जब दर्शनसारमें माथुरसंघकी उत्पत्तिका समय ९५३ लिखा है तब वह उसके ३०-४० वर्ष बाद ही बना होगा। मैंने अपने 'दर्शनसार' के अन्तिम पृष्ठ पर 'भ्रमसंशोधन' शीर्षक-के नीचे इस बातका उल्लेख कर भी दिया है; परन्तु मालूम नहीं सोनीजीने ग्रन्थ-को कैसे पढ़ा है जो यह लिख दिया कि मैंने दर्शसारमें उसके कर्त्ताका समय सं० ९०९ लिखा है।

२—श्लोकवार्तिकके कर्त्ता विद्यानन्द-स्वामी किस समय हुए हैं, इसका निर्णय मैंने जैनहितैषी भाग ९ पृष्ठ ४३९-५५ में किया है और उसीका सारांश युक्त्यनुशा-सनकी भूमिकामें दिया गया है। उसके अनुसार विद्यानन्दस्वामीका ग्रन्थ-रचना काल वि० सं० ८४० से ८९५ के बीच निश्चित होता है। ८४० के बाद कहनेका कारण यह है कि हरिवंशपुराण में—जो वि० सं० ८४० में समाप्त हुआ है—उस समयके प्रायः सभी दाक्षिणात्य जैना-चार्योंका स्मरण किया गया है; परन्तु उनमें विद्यानन्दका नाम नहीं है। इसके सिवा दो कारण और हैं जिनसे वे ८४० के बादके ही मालूम होते हैं। एक तो, यह कि प्रसिद्ध मीमांसक विद्वान् कुमारिलभट्टका समय वि० सं० ७५७ से ८१७ तक निश्चित है और वे अकलंकदेव-के समकालीन विद्वान् हैं, बल्कि अक-लंकदेवके बाद भी कुछ समयतक जीते रहे हैं। क्योंकि उन्होंने अपने श्लोक-वार्तिकमें अष्टशतीके अनेक वाक्योंको उद्धृत करके उनका खण्डन किया है और अकलंकदेवके स्वर्गवासके बाद उसका प्रतिखण्डन विद्यानन्दस्वामीने अष्टसहस्रीमें किया है। दूसरे, राठौर राजा साहसतुंग या शुभतुङ्गका राज्य-काल वि० सं० ८१० से ८३२ तक है और भट्टाकलंकदेव उसकी सभामें शास्त्रार्थ करने गये थे। विद्यानन्दस्वामी अकलंक-देवके पश्चाद्वर्ती हैं, अतः उनका समय ८३२ के बाद मानना अनुचित नहीं जान पड़ता। वि० सं० ८९५ के पहले माननेका कारण यह है कि आदिपुराणमें विद्यानन्दस्वामी (पात्रकेसरी) का स्मरण किया गया है, जिससे मालूम होता है कि उस समय उनकी खूब ख्याति हो चुकी थी।

३—परन्तु यह वि० संवत् ८९५ उनके अस्तित्वका अधिकसे अधिक पिछला समय हो सकता है। इसके बाद तो उन्हें मान ही नहीं सकते। क्योंकि पूर्वोक्त आदिपुराणमें चन्द्रोदयके कर्त्ता आचार्य प्रभाचन्द्रने अपने प्रमेयकमलमार्तण्डमें विद्यानन्दस्वामीका उल्लेख किया है। ऐसी अवस्थामें विद्यानन्दस्वामीको प्रभा-चन्द्रका उल्लेख करनेवाले आदिपुराणसे यदि ३०-४० वर्ष पहले माना जाय, तो कुछ अयुक्त न होगा।

४—इस तरह दर्शनसारके कर्त्ता

नहीं बन सकते, क्योंकि इनमेंसे किसीके स्वीकार करनेपर छन्दमें दो मात्राएँ बढ़ जाती हैं। भले ही अजैन और अनार्ष प्राकृतमें 'नवति' शब्दका सप्तम्यन्तरूप 'णवदीए' या 'णवईए' बनता हो, परन्तु आर्ष प्राकृतमें उसका रूप 'णउए' या 'णवए' होना भी बहुत अधिक संभव है; क्योंकि आर्ष प्राकृत 'बहुल' रूपसे होती है और उसमें संपूर्ण विधियोंका विकल्प किया जाता है जैसा कि हेम-चन्द्राचार्यके निम्न वाक्योंसे प्रकट है—"आर्षं प्राकृतं बहुलं भवति। आर्षेहि सर्वे विधयो विकल्प्यन्ते।" त्रिवि-क्रम नामके दि० जैनकवि भी इस विषयमें प्रायः ऐसा ही सूचित करते हैं और आर्ष प्राकृतका कोई खास नियम (लक्षण) न बतलाकर सम्प्रदायको ही उसका बोधक ठहराते हैं। यथा—

देश्यमार्षं च रूढत्वात्स्वतन्त्रत्वाच्च भूयसा।
लक्ष्म नापेक्षते तस्य संप्रदायोहि बोधकः॥

इसलिए प्राकृतमें उक्त 'णउए' या 'णवए' रूपका होना जरा भी अप्राकृतिक नहीं मालूम होता।

—सम्पादक।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

देवसेनके और विद्यानन्दके समयमें लगभग १५० वर्षका अन्तर पड़ जाता है और इस कारण विद्यानन्दस्वामीके लिए उक्त देवसेनके नयचक्रका उल्लेख करना कदापि सम्भव नहीं है। यदि थोड़ी देरके लिए यह भी मान लिया जाय कि दर्शनसार ९०९ में ही बना है, तो भी वह विद्यानन्दस्वामीका पूर्ववर्त्ती तो कदापि नहीं हो सकेगा।

५—सोनीजीका आक्षेप है कि हमने विद्यानन्द और देवसेन दोनों आचार्योंका समय जुदा जुदा स्थानोंमें 'चतुराईसे' 'चालाकीसे' जुदा जुदा बतलाया है। परन्तु मेरा निवेदन है कि वास्तवमें ऐसा नहीं है। सोनीजीको अपनी घोर कट्टरताके कारण मैं जो कुछ लिखता हूँ, उसमें 'चतुराई' और 'चालाकी' ही दिखलाई देती है। दर्शनसारकी विवेचनामें लिखा हुआ आप देवसेनका समय 'सं० ९०९' तो पढ़ लेते हैं; परन्तु उसीके अन्तिम पृष्ठपर छपा हुआ भ्रमसंशोधन नहीं पढ़ते जिसमें सूचना दी है कि "'णवसए णवए' का अर्थ ९९० करना चाहिए।" युक्त्यनुशासनकी भूमिका भी शायद आपने अच्छी तरह नहीं पढ़ी है। क्योंकि उसमें विद्यानन्दका समय वि० सं० ८९५ नहीं लिखा है, किन्तु यह लिखा है कि "विद्यानन्दका अस्तित्व वि० सं० ८३२ से ८९५ के बीचमें माना जाना चाहिए।" दोनों बातोंमें बहुत अन्तर है। इसी तरह दर्शनसारकी विवेचनामें एक तो विद्यानन्दका समय 'वि० सं० ८००' नहीं किन्तु '८०० के लगभग' है और इतिहासमें 'लगभग' का भी कुछ अर्थ होता है, इससे मैं पूर्वापरविरोध दोषसे साफ बच जाता हूँ। दूसरे वहाँ भूलसे ८५७ की जगह ८०० लिखा गया है और यह भूल इस कारण हुई है कि जैनहितैषीमें विद्यानन्दस्वामीका जो समय-निर्णय किया गया है, वह विक्रम संवत् नहीं किन्तु ईस्वी सनके हिसाबसे किया है और उसमें यही वाक्य दिया है कि "+ + + + विद्यानन्दस्वामीका समय ईस्वी सन् ८०० के लगभग ही निश्चित किया है।" दर्शनसारकी विवेचना लिखते समय यह लेख मेरे सामने था, इस कारण उसमें भी ज्योंका त्यों लिखा गया। वास्तवमें ईस्वी सन् ८०० की जगह वि० संवत् ८५७ लिखना चाहिए। इस भूलको मैं स्वीकार करता हूँ; परन्तु यह भूल ही है, सोनीजीके हृदयमें बसी हुई 'चालाकी' या 'प्रतारणा' नहीं।

६—श्लोकवार्तिकमें जिसका उल्लेख किया गया है, वह नयचक्र श्वेताम्बराचार्यका ही होना चाहिए, ऐसा मेरा आग्रह नहीं है। परन्तु इस बातको मैं नहीं मानता कि हमारे सम्प्रदायके आचार्य श्वेताम्बर सम्प्रदाय या अन्य धर्मी विद्वानोंके ग्रन्थोंका उल्लेख कर ही नहीं सकते, अथवा उनके ग्रन्थोंके अवतरण देने या उनपर टीका लिखनेमें उनके सम्यक्त्वमें कोई बाधा आ जाती है। जो विद्वान् होते हैं वे सभीके ग्रन्थोंको निष्पक्ष दृष्टिसे पढ़ते हैं और एक सीमातक उनका आदर भी करते हैं। "गुणाः पूजास्थानं गुणिषु न च लिङ्गं न च वयः।" यह उदारहृदय विद्वानोंका ही सिद्धान्त है। यद्यपि अभी तक हमारे सम्प्रदायके विद्वानोंका साहित्य बहुत ही कम प्रकाशित हुआ है और जो कुछ प्रकाशित हुआ है, उसका अभीतक अन्वेषिणी बुद्धिसे अध्ययन नहीं किया गया है, फिर भी उपलब्ध साहित्यमेंसे ही ऐसे अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं जिनसे मालूम होता है कि दि० जैन विद्वान् भी विभिन्न सम्प्रदायके

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विद्वानोंके ग्रन्थोंका उल्लेख करते थे, टीकाएँ लिखते थे और उनके प्रति अपना आदरभाव भी व्यक्त किया करते थे। यथा—

(१) सुप्रसिद्ध विद्वान् पं० आशाधरने, जिनका उल्लेख सोनीजीने 'सूरिकल्प' विशेषणके साथ किया है, तीन अजैन ग्रन्थोंकी टीकाएँ लिखी हैं और इनका उल्लेख उन्होंने अपने धर्मामृतशास्त्रकी प्रशस्तिमें किया है। इन ग्रन्थोंमेंसे एक तो है वाग्भटका सुप्रसिद्ध वैद्यकग्रन्थ अष्टाङ्गहृदय और दूसरा है अमरसिंहका सुप्रसिद्ध अमरकोश। वाग्भट और अमरसिंह ये दोनों ही बौद्ध विद्वान् थे। तीसरा ग्रन्थ है, आचार्य रुद्रटका काव्यालङ्कार। यह अलङ्कारका बहुत ही प्रसिद्ध ग्रन्थ है और इसके कर्त्ता वेदानुयायी थे। आशाधरजीने 'अनगारधर्मामृत" की टीकामें एक स्थानपर (पृष्ठ १५०) अपने प्रतिपाद्य विषयके समर्थनार्थ नीचे लिखा एक श्लोक उद्धृत किया है जो श्रीहर्षके 'नैषधचरित' के १७ वें सर्गका है—

अनादाविह संसारे दुर्वारे मकरध्वजे।
कुले च कामिनीमूले काजातिपरिकल्पना॥

(२) आचार्य पूज्यपादके शिष्य गङ्गवंशीय राजा दुर्विनीतने महाकवि भारविके किरातार्जुनीय काव्यके १५ सर्गोंकी कनड़ी टीका लिखी है और भारवि अजैन थे।

(३) वादिपर्वतवज्र भावसेन त्रैविधदेवने शालिवाहनके मन्त्री शर्ववर्माके बनाये हुए सुप्रसिद्ध व्याकरणकलाप या कातन्त्रकी रूपमाला टीका लिखी है जो जैन पाठशालाओंमें पढ़ाई जाती है। जो लोग यह समझते हों कि शर्ववर्मा जैन थे, उन्हें डा० बेलवलकर एम० ए०, पीएच० डी० के 'सिस्टम्स आफ़ संस्कृत ग्रामर' को और 'बङ्गीय साहित्यपरिषत्पत्रिका' के बँगला सं १३१७ के पहले अङ्कमें श्रीघनमाली चक्रवर्ती वेदान्ततीर्थ एम० ए० के 'कातन्त्रव्याकरण' शीर्षक लेखको पढ़ना चाहिए। इसके कर्त्ताके जैन होनेका जैनसाहित्यमें कहीं उल्लेख भी नहीं मिलता।

(४) आदिपुराणके कर्त्ता भगवज्जिनसेनका पार्श्वाभ्युदय काव्य कालिदासके प्रति उनके आदर-भावका ही द्योतक है। इस किंवदन्तीका खण्डन अच्छी तरह किया जा चुका है कि पार्श्वाभ्युदय काव्य कालिदासको अपमानित या तिरस्कृत करनेके लिए बनाया गया था।

(५) श्रीसोमदेवसूरिने अपने यशस्तिलकके द्वितीय आश्वास (पृष्ठ ३१७) में राजाको 'सुकविकाव्यकथाविनोददोहनमाघ' के विशेषणसे सम्बोधित किया है और इस तरह पर्यायसे महाकवि माघकी प्रशंसा की है। इसी आश्वासमें और एक जगह (पृष्ठ २३६–३७) आचार्य पूज्यपाद, अकलङ्क आदि जैन विद्वानोंके साथ पाणिनि (पणिपुत्र), शुक्राचार्य (कवि), नाट्याचार्य भरत आदि अजैन आचार्योंका उल्लेख किया है और वह उल्लेख उनके गुणोंकी प्रशंसा करनेवाला ही है।*

आजकलके कट्टर धर्मात्मा कह सकते हैं कि हमारे आचार्य अन्य धर्मियोंका आदर भले ही करें, परन्तु श्वेताम्बरी आदि जैनाभासोंका तो कदापि नहीं कर सकते। इसके लिए सोनीजीने बड़े बड़े शास्त्रीय प्रमाण दिये हैं। परन्तु हम ऐसे भी अनेक प्रमाण दे सकते हैं जिनसे पाठकोंको यह निश्चय हो जायगा कि

* यशस्तिलकमें सोमदेव सूरिने कितने ही अजैन आचार्यों तथा विद्वानोंके वाक्योंको गौरवके साथ उद्धृत किया है। और एक स्थानपर उर्व, भारवि, भवभूति, भर्तृहरि, भर्तृमेण्ठ, कण्ठ, गुणाढ्य, व्यास, भास, वोस, कालिदास, बाण, मयूर, नारायण, कुमार, माघ, राजशेखर आदि अजैन कवियोंको 'महाकवि' ऐसे गौरवान्वित पदसे विभूषित किया है (चतुर्थ आश्वास)—सम्पादक।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मूलसंघी दिगम्बरी विद्वानोंने जैनाभासों-के श्वेताम्बर, यापनीय, द्रविड़ और माथुर सङ्घके ग्रन्थोंका भी आदर किया है।

(६) यह सिद्ध किया जा चुका है कि शाकटायन या पाल्यकीर्ति यापनीय सङ्घ-के आचार्य थे और श्रीश्रुतसागरसूरिके कथनसे* तथा और भी अनेक प्रमाणोंसे यह निश्चय हो गया है कि यापनीयसङ्घ श्वेताम्बरोंके ही समान स्त्रीमुक्ति केवलि-मुक्ति आदि मानता है। बल्कि स्वयं शाकटायन आचार्यका बनाया हुआ 'स्त्रीनिर्वाण-केवलिमुक्ति प्रकरण' नामका ग्रन्थ मिला है जिसमें उन्होंने इन दोनों बातोंका खूब जोरोंसे प्रतिपादन किया है। ऐसी दशामें भी उनके व्याकरणपर अनेक मूलसङ्घी आचार्यों और विद्वानों-ने टीकाएँ लिखी हैं और किसी किसीने तो उनको नमस्कारतक किया है! शाक-टायनकी एक टीका 'मणिप्रकाशिका' नामकी है जो अजितसेनाचार्यकी लिखी हुई है, दूसरी कातन्त्ररूपमालाके कर्त्ता भावसेन त्रैविधदेवकी है, तीसरी आचार्य प्रभाचन्द्रकी है, जिसका नाम 'अमोघ-वृत्तिन्यास' है और चौथी अभयचन्द्र सूरिकी 'प्रक्रियासंग्रह' है। ये चारों टीकाएँ मूलसंघी आचार्योंकी हैं। मुनि वंशाभ्यु-दय काव्यके कर्त्ता चारुकीर्ति पण्डितदेव (चिदानन्द) ने—जो मूलसंघीय आचार्य थे—लिखा है कि "शाकटायनने अपने बुद्धिरूप मन्दराचलसे श्रुतसमुद्रका मन्थन करके यशके साथ व्याकरणरूप उत्तम अमृत निकाला। × × जगत्प्रसिद्ध शाक-टायन मुनिने सूत्र और वृत्ति बनाकर एक प्रकारका पुण्य सम्पादन किया। एक बार अविद्धकर्ण सिद्धान्तचक्रवर्ती पद्मनन्दिने मुनियोंके मध्य पूजित हुए शाक-टायनको 'मन्दरके समान धीर' विशेषण-से विभूषित किया था।" कहनेकी आव-श्यकता नहीं कि ये पद्मनन्दि सिद्धान्त-चक्रवर्ती भी मूलसंघी आचार्य थे।

(७) न्यायविनिश्चयालंकार, पार्श्वनाथ काव्य, यशोधर चरित, आदिके कर्त्ता वादिराजसूरि द्रविडसंघके आचार्य थे और इस संघकी गणना भी मिथ्या-तियोंमें—जैनाभासोंमें—है। परन्तु इनके ग्रन्थोंपर भी अनेक मूलसंघी विद्वानोंने टीकाएँ आदि लिखी हैं और उनकी प्रशंसा की है। पार्श्वनाथ-काव्यकी एक 'पंजिका-टीका' षट्भाषाकविचक्रवर्ती शुभचन्द्रा-चार्य कृत और दूसरी प्रभाचन्द्राचार्य कृत है। यशोधरचरित पर भी प्रभाचन्द्रकी एक 'पंजिकाटीका' है। पं० रायमल्लने एकी-भावकी टीका लिखी है। श्रवणबेल्गोल-की मल्लिषेण प्रशस्तिमें—जो एक मूल-संघी आचार्यकी लिखी हुई है—वादि-राजसूरिकी निःसीम प्रशंसा की गई है।

(८) हरिवंशपुराणके कर्त्ता जिनसेन द्रविड़संघके और अमितगतिसूरि माथुर-(निःपिच्छिक) संघके आचार्य थे। ये दोनों ही जैनाभास हैं। फिर भी इनके ग्रन्थोंकी टीकाएँ और वचनिकाएँ मूल-संघियोंने लिखी हैं। आचार्य वसुनन्दिने अपनी आचारवृत्ति टीका (८ वें परि-च्छेद) में माथुरसंघी अमितगति श्रावका-चारके पाँच श्लोक 'उपासकाचारे उक्त-मास्ते' कहकर उद्धृत किये हैं। इससे तो यहाँतक मालूम होता है कि खास धर्म-ग्रन्थोंमें भी हमारे आचार्य जैनाभासोंके ग्रन्थोंके अवतरण दिया करते थे।*

* "यापनीयास्तु·····रत्नत्रयं पूजयन्ति, कल्पंच वाचयन्ति, स्त्रीणां तद्भवेमोक्ष केवलिजिनानां कवलाहारं परशासने सग्रन्थानां मोक्षं च कथयन्ति।"

* और भी दि० जैन विद्वानोंके बनाये हुए 'सम्यक्त्व-कौमुदी' आदि बीसियों ग्रन्थ ऐसे हैं जिनमें स्वविषय समर्थनादिके लिए सैंकड़ों वाक्य अजैन तथा जैनाभास

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

७—सोनीजीने इस बातको सिद्ध किया है कि श्लोकवार्तिककी अपेक्षा देवसेनसूरिके नयचक्रमें नयोंका कथन विस्तारसे लिखा गया है। इस बातको हम मान लेते हैं और अपनी भूलको सुधार लेते हैं; परन्तु इससे फिर भी यह सिद्ध नहीं होता है कि देवसेनसूरिके इसी नयचक्रके पढ़नेकी सिफारिश श्लोकवार्तिकमें की गई है। पं० वंशीधरजी शास्त्रीके इस कथनके माननेमें भी हमें कोई आपत्ति नहीं है कि देवसेनसूरिने जिस नयचक्रके नष्ट हो जानेका उल्लेख किया है, संभव है कि उसीके पढ़नेकी सिफारिश श्लोकवार्तिकमें की गई हो और वह किसी दिगम्बराचार्यका ही बनाया हुआ हो। परन्तु फिर भी इस विषयमें कोई बात सर्वथा निश्चित रूपसे नहीं कही जा सकती है।

८—सिद्धसेनसूरिके सम्बन्धमें सोनीजीने, पं० वंशीधरजीने और पं० रामप्रसादजीने जो अनेक आक्षेप किये हैं, इस समय हम उनका उत्तर नहीं देना चाहते। इसके पहले कि उनके विषयमें कुछ लिखा जाय, हम पण्डित महाशयोंसे यह प्रार्थना करते हैं कि वे पहले स्वयं ही सिद्धसेनसूरिके सम्मतितर्क, न्यायावतार और त्रिशंकासमूहको एक बार अच्छी तरह पढ़कर निश्चय कर लें कि उनकी रचनाओंमें कोई बात, कोई सिद्धान्त दिगम्बर सम्प्रदायके विरुद्ध तो नहीं है? और यदि है तो उसे किसी श्वेताम्बरी विद्वान्ने पीछेसे तो नहीं घुसेड़ दिया है? सोनीजीको सन्देह है कि शायद वे पहले श्वेताम्बर रहे हों और पीछे दिगम्बरी हो गये हों। इसलिए यह भी निश्चय कर लेना चाहिए कि इनमेंसे कौन कौन ग्रन्थ श्वेताम्बरी अवस्थाके हैं और कौन दिगम्बर अवस्थाके। पण्डित महाशयोंके द्वारा इन सब बातोंके प्रकट हो चुकनेपर ही हमें उनके आक्षेपोंका समाधान करनेमें सुभीता होगा। हम यह कह देना भी उचित समझते हैं कि इन ग्रन्थोंके पढ़नेमें जो परिश्रम किया जायगा वह व्यर्थ न जायगा, क्योंकि ये सभी ग्रन्थ अनुपम हैं।

सम्पादकीय नोट।

पं० पन्नालालजी सोनीके जिस लेखके उत्तरमें यह लेख लिखा गया है उसे

विद्वानोंके ग्रन्थोंसे उद्धृत किये गये हैं; और सोनीजीने त्रिवर्णाचारों तथा संहिताओंको भी प्रमाण माना है। उनके लिए और दूर जानेकी जरूरत ही क्या है? उन्हें जिनसेन त्रिवर्णाचार और भद्रबाहुसंहिताके परीक्षालेखोंको ही देखना चाहिए। उनके देखनेसे मालूम हो जायगा कि इन ग्रन्थोंमें विवेकविलास (श्वे०), योगशास्त्र (श्वे०) मुहूर्तचिन्तामणि, पीयूषधारा, याज्ञवल्क्यस्मृति, मिताक्षरा, आचारादर्श, विष्णुपुराण, वामनपुराण, मनुस्मृति, पराशरस्मृति, अत्रिस्मृति, आपस्तम्भ, गृह्यसूत्र, बृहत्संहिता, बृहत्पाराशरीहोरा आदि कितने अजैन और जैनाभास ग्रन्थोंके वाक्योंको उठाकर रक्खा गया है और उन्हें अपने प्रतिपाद्य विषयका एक अंग बनानेके लिए कितना अधिक पसन्द किया गया है। कितनी ही जगह तो साफ तौरसे अजैन ग्रन्थोंको देखनेकी प्रेरणा की गई है। यथा—

"एतेच सूतवैदेहिकचाण्डालमागध क्षत्रायोगवाः षट् प्रतिलोमजाः एतेषां च वृत्तयः 'औशनसे मानवे' द्रष्टव्याः।" (ग्रन्थपरीक्षा प्रथम भाग पृ० ७५)

कितने ही वाक्योंके साथ 'इतिविज्ञानेश्वरः' 'इत्यंगिराः," 'प्रचेताः' ऐसे अजैनाचार्योंके नाम भी लगे हुए हैं। ऐसी हालतमें जो लोग सर्वथा यह समझते हैं कि दिगम्बर आचार्योंने अजैन तथा जैनाभास आचार्योंके वाक्योंको प्रमाण मानकर उनका उल्लेख अपने ग्रन्थोंमें नहीं किया, यह उनकी बड़ी भूल है और उससे ऐसा मालूम होता है कि उनका जैनसाहित्य विषयक अध्ययन अभी बहुत कम है और जो कुछ है भी वह तुलनात्मक पद्धतिसे नहीं किया गया। ऐसी ही हालत जैनाभासोंके प्रमाणादि विषयकी है। सोनीजीने अभीतक उसका रहस्य नहीं समझा। वे स्वयं कितने ही जैनाभास आचार्योंके ग्रन्थोंको बड़ी पूज्य दृष्टिसे पढ़ते, प्रणाम करते और प्रमाण मानते हैं। उन्हें पहले ऐसे आचार्योंकी एक सूची तय्यार करनी चाहिए और फिर उससे जैनसाहित्यको जाँचना चाहिए। सम्पादक।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हमने देखा है और साथ ही पं० नाथूरामजी प्रेमीका वह मूल लेख भी इस समय हमारे सामने है जिसकी भित्ति पर सोनीजीको अपना लेख खड़ा करना पड़ा। प्रेमीजीके लेखमें 'सम्भव' आदि शब्दोंसे प्रारम्भ होनेवाले उस प्रकारके सब वाक्य मौजूद हैं जिनका उल्लेख उन्होंने इस लेखके शुरूमें किया है। दर्शनसारके अन्तमें उन्होंने साफ तौरसे ग्रन्थके बननेका समय वि० सं० ९९० सूचित किया है। दर्शनसारकी विवेचनामें सं० ८०० के साथ "लगभग" शब्द लगा हुआ है और युक्त्यनुशासनकी भूमिकामें विद्यानन्द स्वामीका अस्तित्वविषयक वह वाक्य भी मौजूद है जिसे प्रेमीजीने ऊपर उद्धृत किया है। साथ ही एक स्थान पर वि० सं० ८९५ के साथ 'लगभग' शब्द भी लगा हुआ है। इन सब बातोंके मौजूद होते हुए, हमारी रायमें, उस प्रकारका लेख लिखे जानेकी कुछ भी जरूरत नहीं थी जिसके लिखनेका सोनीजीने कष्ट उठाया है। जान पड़ता है, सोनीजीको अभी तक इस बातका परिज्ञान नहीं है कि ऐतिहासिक पर्यालोचन किस तरहसे हुआ करता है, वह कितना कठोर और निर्मम विषय है, उसमें 'सत्यदेव' की कितने शुद्ध हृदयसे उपासना की जाती है और ऐसे लेखोंका कोई भी शब्द, व्यर्थ न होकर, कभी कभी कितने गहरे अर्थको लिये हुए होता है। यही वजह है कि आप उक्त लेखके आशयको नहीं समझ सके और न उसके 'सम्भव' 'लगभग' आदि महत्त्वपूर्ण शब्दोंका आपको कुछ अर्थ बोध हो सका। आपके लेखसे कषायभाव टपका पड़ता है और कितनी ही जगहपर उसकी भाषा दोषपूर्ण हो गई है। एक ऐतिहासिक लेखकके उत्तरमें लिखे हुए लेखकी भाषा ऐसी कभी नहीं होती और न होनी चाहिए। ऐसी भाषाके लेखोंके प्रत्युत्तरमें विचारकोंकी बहुत ही कम प्रवृत्ति पाई जाती है और उससे बहुत कुछ हानिकी सम्भावना है। हमें सोनीजीके लेखके सम्बन्धमें कुछ अधिक लिखनेकी जरूरत नहीं है। प्रेमीजीने स्वयं अपने इस लेखमें प्रकृत विषयका बहुत कुछ स्पष्टीकरण कर दिया है; और जहाँ कुछ विशेष सूचित करनेकी जरूरत समझी, वहाँ हमने फुटनोट लगा दिये हैं, और इससे हम समझते हैं कि पाठकोंका बहुत कुछ समाधान हो जायगा। हाँ, एक बात और प्रकट कर देना जरूरी है; और वह यह है कि, यद्यपि हमें अभी तक इसमें कोई सन्देह नहीं कि 'दर्शनसार' ग्रन्थ वि० सं० ९९० का बना हुआ है, तो भी इसमें कुछ सन्देह जरूर है कि यह 'नयचक्र' ग्रन्थ उन्हीं देवसेन आचार्यका बनाया हुआ है जो कि दर्शनसारके कर्ता थे। दोनों ग्रन्थ एक ही आचार्यके बनाये हुए हैं, इस बातको बतलानेवाला कोई भी पुष्ट प्रमाण अभी तक किसी विद्वान्की ओरसे उपस्थित नहीं किया गया। यह कहा जा सकता है कि 'भावसंग्रह' के कर्ता देवसेन आचार्यने अपनेको 'विमलसेन' गणधरका शिष्य लिखा है और ग्रन्थके शुरूमें महावीर भगवानको नमस्कार किया है। इन दोनों ग्रन्थोंके आदिमें भी 'वीरजिनेन्द्र' को नमस्कार किया गया है और साथ ही उनका 'विमलणाणं' तथा 'विमलणाण संजुत्तं' ऐसा विशेषण दिया गया है। आराधनासारका भी ऐसा ही मंगलाचरण पाया जाता है। इससे ये चारों ग्रन्थ एक ही विद्वान्के बनाये हुए हैं। परन्तु ये सब बातें 'दर्शनसार' और 'नयचक्र' के कर्ताकी एकता सिद्ध करनेके लिए पर्याप्त नहीं हैं। ऐसी समानताओंकी अन्यत्र भी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बहुत कुछ सम्भावना हो सकती है। देवसेन नामके और भी कई आचार्य हो गये हैं। एक 'देवसेन' माथुरसंघी अमितगति (धर्मपरीक्षाके कर्ता)के पड़दादा गुरुके भी गुरु थे और इसलिए उनका समय वि० की ९ वीं शताब्दीके करीब बैठता है। दूसरे देवसेन आदिपुराणके कर्ता जिनसेनाचार्यके समकालीन पाये जाते हैं, जैसा कि जयधवला टीकाकी प्रशस्तिके अन्तमें दिये हुए निम्न वाक्यके 'श्रीदेवसेनार्चिताः' पदसे ध्वनित होता है और यह भी पाया जाता है कि वे एक बड़े पूज्य आचार्य थे—

सर्वज्ञ प्रतिपादितार्थगण-
भृत्सूत्रानुटीकामिमां।
*येऽभ्यस्यन्ति बहुश्रुताः
श्रुतगुरुं सम्पूज्यवीरं प्रभुं॥
ते नित्योज्वल पद्मसेनपरमाः (?)
श्रीदेवसेनार्चिताः।
भासन्ते रविचन्द्रभासिसुतपाः
श्रीपालसत्कीर्तयः॥

श्रीजिनसेनाचार्यने पात्रकेशरी (विद्यानन्द स्वामी) का आदिपुराणमें जिस ढङ्गसे उल्लेख किया है उससे विद्यानन्द स्वामी जिनसेनके समकालीन ही जान पड़ते हैं। जिनसेनाचार्य एक अच्छे वृद्ध आचार्य हुए हैं। सम्भव है कि नयचक्र उन्हीं देवसेनाचार्यका बनाया हुआ हो जो जिनसेनाचार्य तथा विद्यानन्द स्वामीके समकालीन थे। इनका भी समय विक्रमकी ९वीं शताब्दी होता है। क्योंकि जयधवला टीका शक सं० ७५९ (वि० ८९४) में बनकर समाप्त हुई है। अतः विद्वानोंको अन्तरंग साहित्यकी जाँच आदिके द्वारा इस विषयकी अच्छी खोज करनी चाहिए कि यह 'नयचक्र' ग्रन्थ कौनसे देवसेन आचार्यका बनाया हुआ है। यह विषय और भी अच्छी तरहसे स्पष्ट हो जाय इसी लिए हमें इतना सूचित करनेकी जरूरत पड़ी है।

महासभाके कानपुरी अधिवेशनका कच्चा चिट्ठा।

(लेखक—श्रीयुत् बाबू अजितप्रसादजी वकील, लखनऊ।)

भारतवर्षीय दि० जैन महासभाका पच्चीसवाँ अधिवेशन कानपुरमें हो चुका। इस अधिवेशन पर जैन जातिहितैषियोंकी बहुत बड़ी आशा लगी हुई थी और महीनों पहलेसे इसके दिन गिने जा रहे थे। इस अधिवेशनके सभापति थे, वयोवृद्ध, सौम्यमूर्ति साहु सलेखचन्दजी, नजीबाबाद। चैत्र बदी ७ को सभापति महोदयके स्वागतका दृश्य अपूर्व था। कानपुर निवासी जैन और अजैन जनताने एक-मन होकर जिस प्रकार उनका सम्मान किया है, उससे प्रत्येक जैनको आनन्द और आत्मगौरवका अनुभव होता था। चैत्रबदी ८ का रथोत्सव बड़ी शानके साथ निकाला गया था और उससे जैन जातिके गौरवकी बहुत कुछ घोषणा होती थी।

उत्सवकी समाप्ति पर अभिषेक और पूजन हो जानेके बाद, दिल्ली निवासी श्रीयुत मिस्टर चम्पतरायजी, बैरिस्टर हरदोईने जैन साहित्य प्रदर्शनका द्वारोद्घाटन करते हुए जैनोंके दर्शन, न्याय और साहित्यका महत्व बड़े ही अच्छे ढंगसे दर्शाया। रात्रिको फिर आपका व्याख्यान सभामण्डपमें, जो ८०×१०० फीटके साफ़ सुथरे शामियानेके नीचे बनाया गया था, रायबहादुर लाला द्वारिकाप्रसादजी, हढौरके सभापतित्वमें "जैनदर्शन" पर हुआ। इस व्याख्यानमें बैरिस्टर साहबने प्रायः घंटेतक, जैन सिद्धान्त-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

का महत्व ऐसे स्पष्ट शब्दोंमें दिखलाया कि जिससे उपस्थित जनताको यह विदित हो गया कि सनातन हिन्दूधर्म, जैनधर्म केही सिद्धान्तोंकी नीवपर खड़े किये गये हैं और खोज करनेसे प्रतीत होता है कि सार्वधर्म जैनधर्म ही है, जो स्याद्वाद नय-विवक्षासे सब मतान्तरोंके भेदों और विरोधोंको दूर कर देता है। आपके प्रभावशाली व्याख्यानकी श्रीमान् ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी तथा अन्य ब्रह्मचारियों और पण्डित महाशयोंने प्रशंसा करते हुए समालोचना की, और "जैनधर्मकी जय" ध्वनिके साथ सभा रातके ११ बजेके क़रीब विसर्जित हुई।

दूसरे दिन दो बजेसे महासभाकी कार्यवाही प्रारम्भ हुई। सभा-मण्डप भरा हुआ था। महिला समाजके वास्ते जो स्थान चिक और परदे डालकर नियत किया गया था; वह संकुचित था और पीछेको था, जहाँ वक्ताकी आवाज़ स्पष्ट रूपसे नहीं पहुँचती थी, इस कारण कुछ चिकोंको उठाकर आगेकी ओर महिला-समाज को स्थान दिया गया और वह भी सब तुरन्त ही महिलामण्डलसे भर गया। मंगलाचरणके पश्चात् श्रीमान् बाबू नवल-किशोरजी वकीलने स्वागतकारिणी-समितिकी ओरसे महासभाका विवरण और कानपुरके अधिवेशनके विषयमें संक्षेप रूपसे कुछ प्रस्तावनामात्र कहा। फिर श्रीमान् लाला रामस्वरूपजी सभापति स्वागत का० समितिका व्याख्यान हुआ। इस भाषणमें आपने यह भी कहा कि, 'जैनसमाज आधुनिक देशपरिवर्तनोंसे अपनेको विलग नहीं रख सकता, बल्कि उसका कर्तव्य और अधिकार है कि अपनी आध्यात्मिकताके द्वारा संसारके अनेक कष्टोंको दूर करनेका उचित प्रबन्ध करे। जैन व्यापारी बहुधा दलाल सरीखे हैं और इस कारण देशकी वास्तविक उन्नति नहीं कर सकते, जैन शास्त्रोंका प्रकाशन तथा प्रचार शृंखलाबद्ध रीतिसे होना उचित है, शिक्षाविभागमें धन और शक्तिका अपव्यय हो रहा है, एक जैन शिक्षाका प्रबन्ध केन्द्रस्थ हो सके, दिगम्बर श्वेताम्बर समाजके झगड़ोंका निबटारा होना आवश्यक है; और कुप्रथा सम्बन्धी प्रस्ताव कार्यरूपमें परिणत करनेका समय आ गया है"। इसके बाद चुनाव हो जानेपर सभापति श्रीमान् साहू सलेखचन्दजीका भाषण पढ़ा गया जिसमें उन्होंने कहा कि "महासभाके नामके अनुसार उसकी व्यापकता नहीं है, बल्कि खण्डेलवाल, पद्मावती पुरवाल, जैसवाल, परवार आदि जातीय सभाएँ अलग अलग स्थापित हो रही हैं। ये महासभाके अधीन जातीय पंचायतके रूपमें कार्य करें तो अच्छा हो। महासभा सम्बन्धी दि० जैन महाविद्यालयका कार्य सामान्य पाठशालाका सा है, इसको स्याद्वाद महाविद्यालय काशीके साथ ही मिला देना उचित है; एक ऐसे परीक्षालयकी भी आवश्यकता है जिसका सम्बन्ध समस्त दि० जैन शिक्षासंस्थाओंसे हो और जिसका प्रमाणपत्र सबके लिए मान्य हो; शिल्प, विज्ञान, कृषि, वैद्यक, कला-कौशल विषयोंके सार्वजनिक शिक्षालयोंमें पढ़नेवाले असमर्थ जैन छात्रोंके वास्ते छात्रवृत्तियाँ स्थापित करना जैनसमाजका कर्तव्य है; छपे जैन ग्रन्थोंके प्रचार निषेधमें जो महासभाका सम्वत् १९५३ का प्रस्ताव है, वह रद्द किया जाना चाहिए* जैन

* इस विषयका प्रतिपादन करते हुए आपने जो शब्द कहे थे वे इस प्रकार हैं—

"यहाँ पर मुझे महासभाके उस प्रस्तावका उल्लेख कर देना जरूरी है जो छापे हुए जैन ग्रन्थोंके निषेधसे सम्बन्ध रखता है। यह प्रस्ताव सम्वत १९५३ में पास हुआ था।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मन्दिरों और तीर्थोंको लोगोंने अपनी जागीर बना रक्खा है, उनके हिसाबकी जाँचके वास्ते निरीक्षक नियत होने चाहिएँ; मन्दिरोंके रुपयेको जीर्ण ग्रन्थोंकी प्रतिलिपि करानेमें, और एक मन्दिरका रुपया आवश्यकतानुसार दूसरे मन्दिरमें लगाना चाहिए; तीर्थक्षेत्र सम्बन्धी झगड़ोंके फैसलेके वास्ते ११ सदस्योंकी कमेटी पूर्ण अधिकार सहित बनाई जाय; गौने (द्विरागमन) की रसमको उठा देना चाहिए; महासभाके सभासद और कार्यकर्त्ता उसके प्रस्तावोंपर अमल नहीं करते, अतः ऐसा नियम होना चाहिए कि ऐसे व्यक्ति महासभाके सभासद तथा कार्यकर्ता न रह सकें; और एक जैन बैंककी भी स्थापना होनी चाहिए।"

सभापतिका भाषण समाप्त होनेपर रिपोर्टें पढ़ी गईं*। जैन गज़टकी रिपोर्टके सम्बन्धमें ब्र० शीतलप्रसादजी अपने जैनमित्रके गताङ्क २१ में यह प्रगट करते हुए कि, ६०६६)॥ का घाटा जैनगज़ट खातेमें है और करीब ३०००) का घाटा गत वर्षका है, शोकके साथ लिखते हैं कि "गज़टकी लेखनशैली उत्तम न होनेपर भी इसकी सम्पादकीका कोई यथोचित प्रबन्ध न किया गया, जिससे यह भारी घाटा बन्द हो जाता।" अस्तु। रिपोर्टोंके पश्चात् सब्जेक्ट कमेटीका चुनाव हुआ और उसके सदस्योंकी सूची ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजीने पढ़कर सुनाई। अनुमान १११ सदस्य थे, जिनमें जैन-महिला-रत्न श्रीमती मगनबाई और पण्डिता चन्दाबाईजीके नाम पढ़े जानेपर सभाने हर्ष प्रकट किया। सब्जेक्ट कमेटीका कार्य ८ बजे प्रारम्भ होना निश्चित हुआ था, किन्तु ९ बजे रात्रिके भी पीछे कामका प्रारम्भ हुआ। पहले ही ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजीने कहा कि सब्जेक्ट कमेटीमें दो महिलाओंके चुने जानेसे समाजके कुछ लोग असन्तुष्ट हैं; यद्यपि स्वयं उनके विचारमें उक्त दो महिलाओंका सदस्य होना अनुचित नहीं है, किन्तु समाजकी असन्तुष्ट अवस्थाको देखते हुए यदि उनका चुनाव न होता तो अच्छा होता। और उन्होंने फिर यह भी कहा कि सब्जेक्ट कमेटीका चुनाव नियमविरुद्ध होनेके कारण ठीक नहीं है; क्योंकि दोनों महिलाएँ न महासभाकी सदस्य हैं

उस समय जैन ग्रन्थोंका छापना प्रारम्भ हो हुआ था, और शायद यह सोचा गया था कि वह इस प्रकारकी कार्रवाहियों द्वारा रुक जायगा, परन्तु ऐसा नहीं हो सका, और प्रस्ताव पूर्ण रूपसे असफल रहा।

अब जब कि छपे हुए ग्रन्थोंका आम तौरसे खुला प्रचार हो रहा है, सर्वार्थसिद्धि, राजवार्तिक, श्लोकवार्तिक, अष्टसहस्री, प्रमेयकमलमार्तण्ड, पञ्चाध्यायी, समयसार, प्रवचनसार, पंचस्तिकाय, गोम्मटसारादि जैसे बड़े बड़े और महान् ग्रन्थ भी छप चुके हैं। अच्छे अच्छे विद्वान् पंडित लोग ग्रन्थोंके छपानेका कार्य कर रहे हैं। कुछ सेठ लोग भी ग्रन्थोंके उद्धारमें लगे हुए हैं। माणिकचन्द ग्रन्थमाला, अनन्तकीर्ति ग्रन्थमाला, जैन ग्रन्थरत्नाकर कार्यालय बम्बई, जैनसिद्धान्त प्रकाशिनी संस्था कलकत्ता, दी सेंट्रल पबलिशिंग हाउस आरा आदि कितनी ही संस्थाएँ ग्रन्थोंको छापकर उनका उद्धार कर रही हैं, मन्दिरों तकमें छपे ग्रन्थ विराजमान किये जाते हैं, लोग प्रेमसे उन्हें पढ़ते, खरीदते तथा वितरण करते हैं। और इस समय महासभाके साहित्य प्रदर्शनमें भी उनका एक अलग विभाग रक्खा गया है। तब ग्रन्थोंके छापने और छपे ग्रन्थोंको पढ़ने तथा खरीदनेके निषेध सम्बन्धी उक्त प्रस्तावको स्थिर रखनेका कुछ भी अर्थ नहीं रहता। उलटे सुननेवालोंके लिए यह एक हास्यका विषय बन जाता है। और उससे महासभाके गौरवको धक्का पहुँचता है। इसलिए मेरी सम्मतिमें वह प्रस्ताव अब अनावश्यक और अव्यवहरणीय समझा जाकर रद्द किया जाना चाहिए।"

* जैनप्रदीपसे मालूम हुआ कि रिपोर्टोंकी मंजूरीपर कई व्यक्तियोंने आपत्ति की थी, परन्तु फिर भी वे धींगा-धींगीसे पास हो ही गईं।—सम्पादक।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

न प्रतिनिधि और इस कारण सब्जेक्ट कमेटीमें नहीं चुनी जा सकतीं; और जबतक नई सब्जेक्ट कमेटी (विषय निर्धारण समिति) नियत न हो, काम नहीं हो सकता। इसपर कहा गया कि यह असङ्गत विषय है, इस कमेटीको इस प्रश्नके उठानेका अधिकार नहीं है, यह कमेटी महासभाकी बनाई हुई है और यह प्रश्न यदि हो सकता है तो महासभाके अधिवेशनमें उपस्थित हो सकता है। सभापति महोदयने इस युक्तिसे सहमत होकर यह निर्णय किया कि यह प्रश्न नहीं उठाया जा सकता और काम प्रारम्भ होना चाहिए; किन्तु पण्डित धन्नालालजी काशलीवाल, पण्डित वंशीधर और एक दो और सदस्य, उच्च स्वरसे, बोलते ही रहे और कभी अनुचित शब्दोंका व्यवहार भी करते रहे। सभापति महोदयके बारम्बार सविनय प्रार्थना करनेपर भी चुप नहीं हुए और पण्डित वंशीधरने सभापति महोदयको यहाँतक कहनेपर मजबूर कर दिया, कि यदि पण्डित वंशीधरजीको इस विषयमें इतना हठ है और वह सभापतिका फैसला और सभापतिकी प्रार्थनाको भी नहीं मानते तो वह सभाको छोड़ दें और आगे कामको चलने दें। इसपर पण्डित धन्नालाल और उनके आठ दस अनुयायी कोलाहल करते हुए खड़े हो गये और वहीं खड़े रहकर देरतक शोर मचाते रहे। बादको दूसरे कमरेमें जहाँ पण्डित धन्नालाल ठहरे हुए थे, चले गये। उनके पीछे महामन्त्री लाला भगवानदासजी और शनैः शनैः उनके दफ़्तरके लोग भी पण्डित धन्नालालजीके स्थानपर चले गये; और सभापति महोदयके बुलानेपर भी नहीं आये। रूठोंको मनाने और फिर बुलानेका कार्य घण्टोंतक होता रहा। सभापतिके अतिरिक्त अन्य प्रतिष्ठित महाशय कई बार इस रुष्ट मण्डलको मनाने गये किन्तु वे लोग नहीं आये। जहाँतक याद पड़ता है, इस काममें रायबहादुर लाला घमण्डीलाल, लाला रामस्वरूपजी सभापति स्वागतकारिणी समिति, लाला तिलोकचन्द दिल्लीवाले, लाला शिब्बामल अम्बालेवाले, हकीम कल्याणराय और ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजीने भी भाग लिया था। इस प्रकार जब रातके करीब दो बज गये तब ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजीसे व्यवस्था माँगी गई और उनका यह आदेश होनेपर कि महासभाके अधिवेशनमें सब्जेक्ट कमेटीका चुनाव फिरसे किया जाय, सब लोग अपने अपने स्थानपर चले गये।

दूसरे दिन महासभामें साहू जुगमन्दिरदासजीने, जो गत रात्रिको सभापति महोदयके सहायकरूपसे सब काम करते रहे थे, रात्रिका विवरण संक्षेपसे सुनाया और कहा कि सब्जेक्ट कमेटी नई चुनी जाय। लाला जग्गीमलजी दिल्लीनिवासीने इसका अनुमोदन किया। लाला जुग्गीमलजी उसी दिन दिल्लीसे पधारे थे और गत दिवसकी कार्यवाहीमें उपस्थित न थे। अनुमोदन होते ही एक ब्रह्मचारी महाशयने खड़े होकर जैनधर्मकी जयध्वनिके साथ यह कह दिया कि यह प्रस्ताव स्वीकृत हुआ, और उपस्थित प्रतिनिधि समाजको यह अवसर ही नहीं दिया गया कि कोई इस विषयमें कुछ कह सके! हमारे इस प्रश्न करने पर कि यह बतला दिया जाय कि सब्जेक्ट कमेटीमें महासभाके सदस्य और प्रतिनिधि ही चुने जायँगे या अन्य उपस्थित महाशय भी, महामन्त्रीजीने उत्तर दिया कि अन्य प्रतिष्ठित महाशय भी चुने जा सकते हैं। तब हमने कहा कि यह बात

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इस स्थानपर सभाकी कार्यवाहीमें लिख ली जाय और सभापति महोदयने हुक्म दिया कि ऐसा किया जाय। इसके बाद हमने यह निवेदन किया कि जो सब्जेक्ट कमेटी आज चुनी जाय उसकी नामावली-के साथ साथ गत दिवसकी चुनी हुई सब्जेक्ट कमेटीकी नामावली भी लगा दी जाय; इस कहनेपर कोलाहलसा हो गया और कोई निर्णय नहीं हुआ। फिर नामावली पढ़ी गई। उसमें श्रीयुत विश्वम्भरदासजी गार्गीय सम्पादक 'जाति प्रबोधक' का नाम न था, जो पहले दिन सब्जेक्ट कमेटीमें लिये गये थे और रात्रिको बराबर उसमें उपस्थित रहे थे। साथ ही कुछ नाम बढ़ा दिये गये थे। उपर्युक्त दोनों विदुषी महिलाओंने सब्जेक्ट कमेटीकी सदस्यतासे अपना त्यागपत्र पहले ही भेज दिया था और वे गत रात्रिकी सब्जेक्ट कमेटीमें उपस्थित भी नहीं थीं। वास्तविक फल इस सात आठ घण्टेके ख़र्च होनेका यह हुआ कि श्रीयुत विश्वम्भरदासजी गार्गीय सम्पादक 'जाति प्रबोधक' का नाम सब्जेक्ट कमेटीके सदस्योंकी श्रेणीसे निकाल दिया गया और कुछ नये महाशयोंके नाम बढ़ा लिये गये। फिर नई सब्जेक्ट कमेटी-की बैठक प्रारम्भ हुई। देवगढ़के पुराने जैन मन्दिरों और प्रतिबिम्बके रक्षार्थ उपाय करनेका प्रस्ताव पेश हुआ। उस समय विश्वम्भरदास गार्गीयकी आव-श्यकता जान पड़ी कि इस विषयमें सम-झावें कि क्या हुआ और क्या होना चाहिए; क्योंकि उन्होंने इस सम्बन्धमें बड़ा परिश्रम किया था। परन्तु उनको सब्जेक्ट कमेटीकी सभासदीसे पहले ही पृथक् कर दिया गया था इससे वे नहीं बुलाये गये और प्रस्ताव उठा लिया गया*। श्रीयुत कुमार देवेन्द्रप्रसादजी द्वारा स्थापित "दि सेंट्रेल जैन पब्लिशिंग हाउस" नामकी संस्थाको चिरस्थायी बनाने और उसकी सब सम्पत्ति ख़रीद लेनेके विषयमें एक प्रस्ताव लाला रूप-चन्दजीके सुपुत्र लाला रामस्वरूपजी सभा-पति स्वा० का० समितिने उपस्थित कराया जिसका पण्डित धन्नालालजीने विरोध किया और कहा कि जैनशास्त्र छपानेका काम महासभाके उद्देश्यके विरुद्ध है और इसलिए यह प्रस्ताव गिरा दिया गया। ३ घण्टेमें कुल छः प्रस्तावोंका निर्णय हुआ—इनमें दो प्रस्ताव कुछ सज्जनोंकी मृत्युपर शोक और कुटुम्बसे सहानुभूति-सम्बन्धी थे, शेष चार प्रस्ताव स्वदेशी वस्तु व्यवहार, धवलत्रयकी प्रतिलिपि, संयुक्त प्रान्तीय सभा और महाविद्यालय कमेटीसे सम्बन्ध रखते थे। ये सब प्रस्ताव रात्रिके अधिवेशनमें स्वीकृत हो गये।

३ अप्रेलको फिर सब्जेक्ट कमेटीकी बैठक बैठी और वह ८ से ११ और फिर २ से ५ बजे दिन तक हुई। पहले ही महामन्त्रीजीने प्रस्ताव उपस्थित किया कि बाबू नवलकिशोरजी वकीलको कोषा-ध्यक्षके पदसे पृथक् किया जाय, उनको अवकाश नहीं है और न वे हिसाब देते हैं। बाबू नवलकिशोर कोषाध्यक्ष तो हैं, परन्तु महासभाकी आमदनीका रुपया उनके पास जमा नहीं होता और न उनके पास आमदनी-खर्चका हिसाब रहता है। महासभाकी आमदनी और उसका खर्च

* जैनप्रदीपके सम्पादक महाशय लिखते हैं कि महा-सभाके नियम नं० ६२ के अनुसार किसी भी प्रस्तावका पेश करनेवाला सब्जेक्ट कमेटीका मेम्बर जरूर रहेगा। परन्तु अफसोस है कि कुछ मनमौजी लोगोंने इसके विरुद्ध आचरण किया और विश्वम्भरदासजी गार्गीयका नाम बिना वजह ही दूसरे दिन सब्जेक्ट कमेटीसे निकाल दिया।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सब महामन्त्रीजीके अधिकारमें है और वे ही उसका हिसाब रखते हैं। बाबू नवलकिशोर कोषाध्यक्ष इस कारण कहलाते हैं कि महाविद्यालयके ध्रुवकोष सम्बन्धी रुपयोंके सरकारी प्रामिसरी नोट जो उनके पूज्यपिता श्रीमान् जैन जातिभूषण डिप्टी चम्पतरायजीके नाम थे, वे उनके देहान्त पर बाबू नवलकिशोरजीके नामपर कोषाध्यक्ष महासभाकी हैसियतसे हैं। उनका सूद सरकारी खजानेसे छठे महीने नियत दरसे दिया जाता है और नोटोंपर लिख दिया जाता है। इन नोटोंके नम्बर और सूदकी दर महासभाके कार्यालयमें है। महामन्त्री जो रुपया बाबू नवलकिशोरजीसे पाते हैं उसकी रसीद भी उनको नहीं देते। यह प्रस्ताव सब्जेक्ट कमेटीसे नामंजूर हुआ परन्तु इसके वादविवादमें कमेटीका एक घण्टेके करीब समय लग गया। जैन गजटके गत वर्षसम्बन्धी लगभग ३०००) रुपये घाटेकी पूर्ति और आगामी सुप्रबन्ध तथा योग्य सम्पादककी योजना-विषयक प्रस्तावपर बहुत विवेचन हुआ।* लाला रामस्वरूपजी कानपुर निवासीने कहा कि आगामी वर्षके वास्ते कानपुर जैनसमाज, जैनगजटके सम्पादन और खर्चेका भार अपने ऊपर लेता है। पं० धन्नालालजीने पूछा, सम्पादन कौन करेगा? कहा गया कि, पण्डित दुर्गाप्रसादजी। इसपर पं० धन्नालालजीने कहा कि पण्डित दुर्गाप्रसादजी स्वतः खड़े होकर कहें। पण्डित दुर्गाप्रसादजीने ऐसा भी किया। तब धन्नालालजीने कहा—"तुम जैनधर्मके अविरुद्ध लेख इसमें लिखोगे और जो धर्मविरुद्ध लेख अन्य समाचारपत्रोंमें प्रकाशित होंगे, उनका खण्डन करोगे।" उन्होंने यह भी स्वीकार किया। फिर कहा गया कि एक वर्ष नहीं बल्कि ३ वर्षका ठेका जैनगजटका कानपुरके भाई ले लें। इससे कानपुरके जैनसमाजका एक प्रकारसे अपमान और निरादर हुआ और वे इस विषयमें उदासीन हो गये। ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजीने जैनगजट सम्पादक पं० रघुनाथदासजी सरनऊ निवासीके सुसम्पादनकी प्रशंसा की और जैनगजटको सालाना घाटा देकर भी उन्हींकी सम्पादकीमें रखनेका परामर्श दिया।* और इस घाटेकी पूर्तिके पुण्यकार्यमें कितने ही धर्मात्माओंने भाग लिया और १२५-१२५ रुपये देना स्वीकार किया। २४८००) का बजट पसन्द किया गया और हमारे यह पूछनेपर कि गत वर्ष १००) रु० जो युवराजके ऐड्रेसमें खर्च होना बतलाये गये हैं वे किस बातमें खर्च हुए; क्योंकि युवराज नहीं पधारे और ऐड्रेस नहीं दिया गया, उत्तर दिया गया कि १००) रु० एक वकीलको मानपत्र (ऐड्रेस) का मसविदा करनेके उपलक्ष्यमें दिये गये हैं। इसपर हमने कहा कि महामन्त्रीजीके इच्छानुसार हमने जो एक ऐड्रेस तय्यार करके उनके पास भेजा था, उसका क्या

---

० इस विवेचनमें स्वागतकारिणी सभाके उपमन्त्री बा० रूपचन्दजीने यह भी कहा कि जैनगजटके वर्तमान सम्पादक अपने कर्तव्यको नहीं। समझते और न जिम्मेदारियोंको पहचानते हैं उन्हें सम्पादकीय कर्तव्योंका ज्ञान करानेके लिए उनके ऊपर एक हेड सम्पादककी भी जरूरत है, ऐसा जैनप्रदीपके सम्पादक महाशय सूचित करते हैं। —सम्पादक।

* परन्तु ब्र० शीतलप्रसादजी जैनमित्रके गतांक नं० २१ में जैनगजटकी सम्पादकीपर अपना निम्न प्रकारसे असन्तोष प्रगट करते हैं, यह बड़ी ही विचित्र बात है। मालूम नहीं इसमें क्या रहस्य है—"शोक है कि गजटकी लेखनशैली उत्तम न होनेपर भी इसकी सम्पादकीका कोई यथोचित प्रबन्ध न किया गया जिससे यह भारी घाटा बन्द हो जाता।"—सम्पादक।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हुआ। इसका कोई उत्तर नहीं दिया गया! महासभाके परीक्षालय सम्बन्धमें बहुमत उसको कायम रखनेके विरुद्ध था। सभापति महोदय और प्रबल बहुमतकी समझमें परीक्षालयको जारी रखना व्यर्थ व्यय समझा गया! कुरीतिसम्बन्धी प्रस्ताव उपस्थित होनेपर हमने कहा कि बहुविवाहकी कुप्रथा भी इसमें जोड़ दी जाय और यह भी प्रस्ताव किया जाय कि जो व्यक्ति इन कुप्रथाओंमेंसे किसीको करे उससे पञ्चायत सम्बन्ध न रक्खे और न उसके ऐसे कार्योंमें सम्मिलित हो। इसपर पं० धन्नालालजीने बहुत क्रोध प्रकट किया और कहा कि वह और उनके मित्रमण्डल ऐसे प्रस्तावका विरोध करेंगे, ऐसे प्रस्तावके होनेसे परिणाम बुरा होगा, धर्म और जातिको हानि पहुँचेगी, स्थानीय पञ्चायतीयोंको अपने अपने प्रान्तमें ऐसे विषयोंका पूर्ण अधिकार है और महासभाको उस अधिकारमें हस्तक्षेप न करना चाहिए। इसपर हमें कहना पड़ा कि यदि महासभा २५ वर्षतक भी ऐसे प्रस्तावको प्रति वर्ष पास करते करते उसपर अमल करनेके लिए पूर्णतया तय्यार नहीं है, तो ऐसे व्यर्थके शब्दाडम्बरमात्र प्रस्तावको न रखना ही अच्छा है।*

शामतक सब्जेक्ट कमेटीमें फिर भी ६ ही प्रस्ताव तैयार हुए। सब्जेक्ट कमेटीकी १२ घण्टेकी ३ बैठकोंमें कई बातें अनोखी और अपूर्व देखनेमें आईं। एक तो यह कि जब कोई बात महामन्त्रीजीके मन्तव्यसे विरुद्ध होती थी तब तो वे और उनके क्लार्क ज़ोर ज़ोरसे यह पुकारते थे कि सभापति महोदयकी स्वीकरता लिए बिना कोई न बोले, बल्कि कभी कभी तो वे यह भी कह देते थे कि लिखितपत्र भेजकर और लिखित स्वीकारता लेकर बोला जाय, किन्तु महामन्त्रीजी और उनके क्लार्क, पं० धन्नालालजी, पं० वंशीधरजी, और कुछ और व्यक्ति कभी भी सभापतिकी अनुमति या इजाजत लेकर नहीं बोलते थे बल्कि सभापति महोदयके मना करने और प्रार्थना करनेपर भी चुप नहीं होते थे। दूसरी बात यह कि, सिवाय जैनगज़टकी सम्पादकीके प्रस्तावके और किसी भी प्रस्तावपर बहुमतसे निर्णय नहीं किया गया, बल्कि बहुमतसे निर्णय किये जानेके लिए बारम्बार प्रार्थना होनेपर भी सभापति महोदय मुसकराकर यह कह देते थे कि बहुमत तो प्रकट ही है, किन्तु बहुमतसे निर्णय करना मुझको अभीष्ट नहीं है! और जैनगज़टकी सम्पादकीके प्रस्तावके समय दोपहर हो जानेसे और पण्डित दुर्गाप्रसाद तथा अलकापुर निवासी महानुभावोंके प्रति इस विषयमें योग्य व्यवहार न होनेसे बहुत लोग उठ गये थे, पण्डित धन्नालालजीके कमरेके लोग समीप ही थे, और बहुमत उस समय स्पष्टतया कानपुरवालोंके विरुद्ध था। परन्तु इस स्थितिपर कुछ ध्यान नहीं दिया गया! तीसरी बात यह कि महामन्त्रीजीने जो प्रस्ताव जिस समय चाहा, उपस्थित किया; किसी सदस्यको अपना प्रस्ताव उपस्थित करानेका अवसर नहीं दिया गया। चौथी बात, यह कहा गया था कि अनुमान २०० प्रस्ताव दफ़्तर महासभामें आये हुए हैं किन्तु उन प्रस्तावोंकी सूचीतक सदस्योंके

* जैनप्रदीपके सम्पादक महाशय लिखते हैं कि बहुविवाह-निषेधके सम्बन्धमें यह भी कहा गया था कि उस विषयका प्रस्ताव पहलेसे महासभामें पास हो चुका है। परन्तु फिर भी पं० धन्नालालजीके विरोध करनेपर बहुविवाहके शब्द इस प्रस्तावमें नहीं रक्खे गये, यह आश्चर्यकी बात है! बालविवाहादि सम्बन्धी प्रस्ताव भी तो कई बार पास हो चुका है।—सम्पादक

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सामने उपस्थित नहीं की गई। किसीको यह भी ज्ञात नहीं हुआ कि जैनसमाजसे अनेक प्रकार रुपया खर्च करनेकी स्वीकारता प्राप्त करनेके अतिरिक्त महासभाके इस अधिवेशनका और क्या आशय था। धवलत्रयके जीर्णोद्धारका प्रस्ताव तो मूड़बिद्रीमें अभिषेकोत्सव पर दिल्लीके संघकी उपस्थितिमें पहले ही हो चुका था। प्रान्तिक सभाकी स्थापनाके वास्ते कानपुरके भाई तथा अन्य युक्त प्रान्तस्थ लोग उत्सुक ही थे। स्वदेशी वस्तु प्रचारका प्रस्ताव जिन शब्दोंमें लिखा गया। उनका प्रयोग बड़े सोच विचार और संकोचके साथ किया गया है। कुरीति निवारण प्रस्ताव केवल एक मङ्गल कामना रूप था। और पाँचवीं बात यह है कि जो आवश्यक बातें स्वागत का० स० के सभापतिके भाषणमें, अथवा महासभाके सभापति महोदयके व्याख्यानमें लिखी गई थी, उनका कथनमात्र भी सब्जेक्ट- कमेटीमें नहीं हुआ, और साधारण व्यक्तियोंके भेजे हुए प्रस्तावोंका तो किसीको पता तक भी नहीं लगा। सभापति महोदयका बराबर यह प्रयत्न रहा, कि महासभा जिस रूपमें उनके सामने आई है **उसी रूपमें कानपुरसे सही सलामत** वापस चली जाय, उनके सभापतित्वमें किंचित्मात्र भी परिवर्तन न हो। और इस उद्देश्यकी पूर्तिके लिए उन्होंने बड़ी सहनशीलता, वचनगुप्ति, मनोगुप्ति, और विचारगुप्तिसे काम लिया और बड़ा कष्ट उठाया। इस सभा-चातुर्यताके लिए उनके सुपौत्र साहू जुगमन्दिरदासजीकी जितनी भी सराहना की जाय वह कम है; क्योंकि सभाका काम सभापतिके नामसे सदा व सर्वथा वे ही करते थे और उन्होंने ही सभापतिका भाषण पढकर सुनाया था।

रात्रिको महासभाका फिर अधिवेशन हुआ। जैनगज़टके घाटेका प्रास्तव उपस्थित होनेपर हमने सखेद उसका विरोध किया और कहा कि यह प्रस्ताव स्वीकार न किया जाय और यदि स्वीकार हो तो इस शब्द-परिवर्तनके साथ कि, "लिए" के स्थान में "विषय में" पढ़ा जाय और "कि घाटेके दस हिस्से" आदि शब्दोंके स्थानमें "कि जैन गज़टमें केवल महासभाके कार्योंकी रिपोर्टें छपा करें, महीनेमें एक दफ़ा निकाला जाय, कोई विवादग्रस्त विषय उसमें न हो, और जो रुपया इस खातेमें बचे, उससे छोटी छोटी पुस्तकें जैनधर्मकी सिद्धान्त-निरूपक छापी जायँ, और लागतके दामपर बेची जायँ।" ऐसा करनेसे घाटेका नाम उड़ जायगा। यह ध्यान रखना चाहिए कि जैन समाजमें और कोई भी ऐसा पत्र नहीं है जिसमें इतना घाटा होता हो और जिसके घाटेका पचड़ा सभामें पेश होकर उसके वास्ते जनतासे चन्दा लिया जाता हो। हमारे इस संशोधनका विरोध पं० धन्नालालजी, पं० वंशीधर जी और कुछ अन्य महाशयोंने किया। और इसलिए यह सातवाँ प्रस्ताव ज्योंका त्यों स्वीकृत हुआ। प्रस्ताव न० ६ में परीक्षालयके सम्बन्धमें यद्यपि सभापति महोदय और जैन जनता चाहती थी कि यह व्यर्थ व्ययका खाता बन्द किया जाय और माणिकचन्द दि० जैन परीक्षालय मुम्बईसे ही परीक्षा लिवाई जाय, किन्तु इस खातेके खर्चका अधिकार भी महामन्त्रीजीके हाथमें ही रहा, लखनऊका न्योता स्वीकार न होनेमें भी पं० धन्नालालजी, पं० वंशीधरजी और कुछ अन्य लोगोंने हर प्रकार बाधा डाली, किन्तु अवध प्रान्तके मुखिया भाइयोंके धर्मप्रेम, और जातिहितैषिताके प्रवाहवश महासभाको

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उनका न्योता स्वीकार करना ही उचित जान पड़ा।

कानपुरकी स्वागतकारिणी समितिकी सेवा और अतिथि-सत्कारकी जितनी सराहना की जाय, थोड़ी है। उनका प्रबन्ध ऐसा था जैसा अबतक महासभाके किसी भी अधिवेशनमें न हुआ होगा। इतना बड़ा विशाल बगीचा, इतना विशाल भवन (जिसमें श्री देवाधिदेवकी प्रतिमा विराजमान थी), इतना साफ़ सुथरा नये कपड़ेका बना हुआ विशाल सभामण्डप, रथयात्राका ऐसा स्वच्छ दृश्य, सेवासमितिका रात्रि भर "वन्देमातरम" की पुकारपर पहरा, इतने अच्छे और सुखप्रद डेरे, मकान, धर्मशाला आदि सबका प्रबन्ध ऐसा था कि इतनी सब उत्तमोत्तम बातोंका समुदाय इस अधिवेशनसे पहले शायद ही कहीं हुआ हो।

महासभाकी शेष कार्यवाही तो और समाचारपत्रोंमें प्रकाशित होगी और हो रही है, किन्तु यह कच्चा चिट्ठा जैनहितैषीके वास्ते उसके सम्पादककी प्रार्थनापर लिखा गया है।

लखनऊ १८-४-२१

भगवत्कुन्दकुन्द और श्रुतसागर।

[माणिकचन्द जैन-ग्रन्थ-मालाका १७ वाँ ग्रन्थ 'षट्प्राभृतादि संग्रह' हालमें ही प्रकाशित हुआ है। उसमें कुन्दकुन्द स्वामीके षट्प्राभृत, रयणसार, बारह अनुवेक्खा, लिंगप्राभृत और शीलप्राभृत ये पाँच ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं। इनमेंसे पहला श्रीश्रुतसागराचार्यकृत संस्कृत टीका सहित और शेष सब संस्कृतच्छाया सहित हैं। इस ग्रन्थकी भूमिकामें भगवत्कुन्दकुन्द और श्रुतसागरका जो परिचय दिया गया है, उसे हम उपयोगी समझकर यहाँ उद्धृत किये देते हैं।

—सम्पादक]

भगवत्कुन्दकुन्द।

दिगम्बर-जैन-सम्प्रदायमें आचार्य कुन्दकुन्द सबसे प्रसिद्ध और सबसे अधिक पूज्य आचार्य गिने जाते हैं। पिछले अधिकांश आचार्योंने आपको उन्हींके अन्वय या आम्नायका बतलाया है। उनकी रचना जैनसाहित्य भरमें अपनी तुलना नहीं रखती।

अबसे लगभग ६ वर्ष पहले हम उनके सम्बन्धमें एक विस्तृत लेख प्रकाशित कर चुके हैं।* वे द्रविड़ देशके 'कोण्डकुण्ड' नामक स्थानके रहनेवाले थे और इस कारण 'कोण्डकुण्ड' नामसे प्रसिद्ध थे। 'कोण्डकुण्ड' का ही श्रुतिमधुर संस्कृतरूप 'कुन्दकुन्द' हो गया है। 'एलाचार्य'के नामसे भी ये प्रसिद्ध थे। तामिल भाषाके सुप्रसिद्ध महाकाव्य 'कुरल' के विषयमें महाराजा कालेज विजयानगरमके इतिहासाध्यापक श्रीयुत एम० ए० रामस्वामी आयंगरने लिखा है कि "जैनियोंके मतसे उक्त ग्रन्थ 'एलाचार्य' नामक जैनाचार्यकी रचना है और तामिल काव्य 'नीलकेशी' के टीकाकार समयदिवाकर नामक जैनमुनि कुरलको अपना पूज्य ग्रन्थ बतलाते हैं"।* इससे आश्चर्य नहीं कि कुरलके रचयिता भगवत्कुन्दकुन्द ही हों। कहते हैं, एलाचार्यने इसे रचकर अपने एक शिष्यको इसलिए दे दिया था कि वह मदुराके कविसङ्घमें जाकर पेश करे।

नन्दिसङ्घकी गुर्वावलीमें लिखा है कि भगवत्कुन्दकुन्दको वि० संवत् ४९ में आचार्यपद मिला और १०१ में उनका

* देखो जैनहितैषी भाग १०, अंक ६-७।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

स्वर्गवास हुआ। तामिल देशके विद्वानोंने कुरल काव्यका रचना-काल भी ईसाकी पहली शताब्दि निश्चित किया है। यदि सचमुच ही वह इन्हीं एलाचार्यका बनाया हुआ है, तो पट्टावलीके समयके साथ उसका रचनाकाल मिल जाता है।

हमने अपने पूर्वोल्लिखित लेखमें भगवत्कुन्दकुन्दका समय विक्रमकी तीसरी शताब्दि निश्चित किया था।

उसके बाद जैनसिद्धान्त-प्रकाशिनी संस्थाद्वारा प्रकाशित 'समयप्राभृत' की भूमिकामें दक्षिणके सुप्रसिद्ध इतिहासज्ञ प्रो० के० बी० पाठकका यह मत प्रकाशित हुआ है कि कुन्दकुन्दाचार्य वि० संवत् ५८५ के लगभग हुए हैं। अपने मतकी पुष्टिमें उन्होंने लिखा है कि जिस समय राष्ट्रकूट-वंशीय राजा तृतीय गोविन्द राज्य करता था उस समय, शक संवत् ७२४ का लिखा हुआ एक ताम्रपत्र मिला है। उसमें निम्नलिखित पद दिये हुए हैं:—

कोण्डकोन्दान्वयोदारो गणोऽभूद्भुवनस्तुतः।
तदैतद्विषयाविख्यातं शाल्मलीग्राममावसन्॥
आसीद(?)तोरणाचार्यस्तपःफलपरिग्रहः।
तत्रोपशमसंभूतभावनापास्तकल्मषः॥
पण्डितः पुष्पनन्दीति बभूव भुवि विश्रुतः।
अंतेवासी मुनेस्तस्य सकलश्चन्द्रमा इव॥
प्रतिदिवसभवद्वृद्धिनिरस्त-
दोषो व्यपेतहृदयमलः।
परिभूतचन्द्रबिम्बस्तच्छिष्योऽभूत्प्रभाचन्द्रः॥

उक्त तृतीय गोविन्द महाराजके ही समयका शक संवत् ७१९ का एक और ताम्रपत्र मिला है, जिसमें नीचे लिखे पद्य हैं:—

आसीद (?) तोरणाचार्यः
कोण्डकुन्दान्वयोद्भव।
स चैतद्विषये श्रीमान्
शाल्मलीग्राममाश्रितः॥
निराकृततमोऽरातिः
स्थापयन् सत्पथे जनान्।
स्वतेजोद्योतितक्षौणि-
श्चण्डांशुरिव यो बभौ॥
तस्याभूत्पुष्पनन्दी तु
शिष्यो विद्वानगणाग्रणीः।
तच्छिष्यश्च प्रभाचन्द्रस्तस्येयं
वसतिः कृता॥

इन दोनों लेखोंका अभिप्राय यह है कि कोण्डकोन्दान्वयके तोरणाचार्य नामके मुनि इस देशमें शाल्मली नामक ग्राममें आकर रहे। उनके शिष्य पुष्पनन्दि और पुष्पनन्दिके शिष्य प्रभाचन्द्र हुए।

पाठक महोदयका कथन है कि पिछला ताम्रपत्र जब शक संवत् ७१९ का है तो प्रभाचन्द्रके दादा-गुरु तोरणाचार्य शक संवत् ६०० के लगभग रहे होंगे और तोरणाचार्य कुन्दकुन्दान्वयमें हुए हैं—अतएव कुन्दकुन्दका समय उनसे १५० वर्ष पूर्व अर्थात् शक संवत् ४५० के लगभग मान लेनेमें कोई हानि नहीं है।

चालुक्यवंशी कीर्तिवर्म महाराजने बादामी नगरमें शक संवत् ५०० में प्राचीन कदम्बवंशका नाश किया था और इसलिए इससे लगभग ५० वर्ष पूर्व कदम्बवंशी महाराज शिवमृगेशवर्म राज्य करते थे, ऐसा निश्चित होता है। पंचास्तिकायके कनडी-टीकाकार बालचन्द्र और संस्कृत-टीकाकार जयसेनाचार्यने लिखा है कि यह ग्रन्थ आचार्य कुन्दकुन्दने शिवकुमार महाराजके प्रतिबोधके लिए रचा था और ये शिवकुमार शिवमृगेशवर्म ही जान पड़ते हैं। अतएव भगवत्कुन्दकुन्दका समय शक संवत् ४५० (वि० ५८५) ही सिद्ध होता है।

* देखो जैनहितैषी भाग १५ अंक १–२।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

परन्तु हमारी समझमें भगवत्कुन्द कुछ इतने पीछेके आचार्य नहीं हैं। जब तक शिवकुमार और शिवमृगेशवर्माके एक होनेके एक दो पुष्ट प्रमाण न दिये जायँ तब तक इस समयको ठीक मान लेनेकी इच्छा नहीं होती। तोरणाचार्य कुन्दकुन्दके अन्वयमें थे, अतएव यह नहीं कहा जा सकता कि वे उनके १५० वर्ष बाद ही हुए होंगे। तीन सौ चार सौ वर्ष या इससे भी अधिक पहले हो सकते हैं।

इस भूमिकाका कम्पोज हो चुकनेपर हमें मालूम हुआ कि पंचास्तिकायके अङ्गरेजी टीकाकार प्रो० ए० चक्रवर्ती नायनार एम० ए०, एल० टी० ने भगवत्कुन्दकुन्दके समयके सम्बन्धमें एक विस्तृत लेख लिखा है। उसमें उन्होंने प्रो० पाठकके मतका विरोध करते हुए यह सिद्ध किया है कि शिवकुमार महाराज कदम्बवंशी शिवमृगेशवर्मा नहीं, किन्तु पल्लववंशी शिवस्कन्दवर्मा होने चाहिएँ। स्कन्द, कुमार और कार्तिकेय षड़ाननके नामान्तर हैं। अतएव शिवस्कन्द और शिवकुमार दोनों निस्सन्देह एक हो सकते हैं। पल्लववंशी राजाओंकी राजधानी काञ्चीपुर या वर्तमान काँजीवरम् थी। विद्या और कलाओंके लिए यह स्थान बहुत ही प्रसिद्ध था। दूर दूरके विद्वान् और कवि यहाँके दरबारमें आते थे। धार्मिक वादविवाद भी वहाँ होते थे। पल्लव राजा जैनी या जैनधर्मके आश्रयदाता थे, इसके भी प्रमाण मिलते हैं। उनकी दरबारी भाषा भी शायद प्राकृत थी। 'माथिड़ावोली' नामका सुप्रसिद्ध ग्रन्थ उसी समयका बना हुआ है और प्राकृतमें है। आचार्य कुन्दकुन्द द्रविड देशके थे, इसके अनेक प्रमाण हैं। अतएव उनका शिष्य शिवकुमार यही शिवस्कन्दवर्मा होगा और उसका अवस्थि-तिकाल विक्रमकी प्रथम शताब्दि है।

श्रीश्रुतिसागरसूरि।

षट्प्राभृत या षट्पाहुड़के टीकाकार आचार्य श्रुतसागर बहुश्रुत विद्वान् थे। इस टीकासे और यशस्तिलक-चन्द्रिका-टीकासे मालूम होता है कि वे कलिकाल-सर्वज्ञ, कलिकाल गौतमस्वामी, उभयभाषाकविचक्रवर्ती आदि महती पदवियोंसे अलंकृत थे। उन्होंने 'नवनवति' (९९) महावादियोंको पराजित किया था!

वे मूलसंघ, सरस्वतीगच्छ और बलात्कारगणके आचार्य और विद्यानन्दि भट्टारकके शिष्य थे। उनकी गुरुपरम्परा इस प्रकार थी—पद्मनन्दि—देवेन्द्रकीर्ति-विद्यानन्दि।

परन्तु विद्यानन्दि भट्टारकके पट्टपर, जान पड़ता है, उनकी स्थापना नहीं हुई थी। क्योंकि विद्यानन्दिके बादकी गुरुपरम्परा इस प्रकार मिलती है—विद्यानन्दि—मल्लिभूषण—लक्ष्मीचन्द्र।

स्वर्गीय दानवीर सेठ माणिकचन्दजीके ग्रन्थभण्डारमें पं० आशाधरके महाभिषेक नामक ग्रन्थकी टीका है। उसके अन्तमें इस प्रकार लिखा है:—

"श्रीविद्यानन्दिगुरोर्बुद्धिगुरोः
पादपंकजभ्रमरः।
श्रीश्रुतसागर इति देशव्रती
तिलकष्टीकते स्मेदं॥
इति ब्रह्मश्रीश्रुतसागरकृता
महाभिषेकटीका समाप्ता॥
श्रीरस्तु लेखकपाठकयोः॥
शुभं भवतु॥ श्री॥

संवत् १५८२ वर्षे चैत्रमासे शुक्लपक्षे पंचम्यां तिथौ रवौ श्रीआदिजिन चैत्यालये श्रीमूलसंघे सरस्वतीगच्छे बलात्कार-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गणे श्रीकुन्दकुन्दाचार्यान्वये भट्टारकश्रीपद्मनन्दिदेवास्तत्पट्टे भट्टारकश्रीदेवेन्द्रकीर्तिदेवास्तत्पट्टे भट्टारकाश्रीविद्यानन्दिदेवास्तपट्टे भट्टारकश्रीमल्लिभूषणदेवास्तपट्टे भट्टारकश्रीलक्ष्मीचन्द्रदेवास्तेषां शिष्यवरब्रह्मश्रीज्ञानसागरपठनार्थं ॥ आर्या श्रीविमलश्री चेली भट्टारक श्रीलक्ष्मीचद्रन्दीक्षिता विनयश्रिया स्वयं लिखित्वा प्रदत्तं महाभिषेकभाष्यं ॥ शुभं भवतु ॥ कल्याणं भूयात् ॥ श्रीरस्तु ॥

इससे मालूम होता है कि विद्यानन्दिके पट्टपर मल्लिषेणकी और उनके पट्टपर लक्ष्मीचन्द्रकी स्थापना हुई थी। यशस्तिलकटीकामें श्रुतसागरने मल्लिभूषणको अपना गुरुभ्राता लिखा है। इससे भी मालूम होता है कि विद्यानन्दिके उत्तराधिकारी मल्लिभूषण ही हुए होंगे। यशस्तिलकचन्द्रिका टीकाके तीसरे आश्वासके अन्तमें लिखा है—

इतिश्रीपद्मनन्दिदेवेन्द्रकीर्तिविद्यानन्दिमल्लिभूषणाम्नायेन भट्टारकश्रीमल्लिभूषणगुरुपरमाभीष्टगुरुभ्रात्रा गुर्जरदेशसिंहासनभट्टारकश्रीलक्ष्मीचन्द्रकाभिमतेन मालवदेशभट्टारकश्रीसिंहनंदिप्रार्थनया यतिश्रीसिद्धान्तसागरव्याख्याकृतिनिमित्तं नवनवतिमहामहावादिस्याद्वादलब्धविजयेन तर्कव्याकरणछन्दोऽलंकारसिद्धान्तसाहित्यादिशास्त्रनिपुणमतिना प्राकृतव्याकरणाद्यनेकशास्त्रचञ्चुना सूरिश्रीश्रुतसागरेण विरचितायां यशस्तिलचन्द्रिकाभिधानायां यशोधरमहाराजचरितचम्पुमहाकाव्यटीकायां यशोधरमहाराजराजलक्ष्मीविनोदवर्णनं नाम तृतीयाश्वासचन्द्रिका परिसमाप्ता।"

इससे मालूम होता है कि उस समय गुर्जर देशके पट्टपर भट्टारक लक्ष्मीचन्द्र स्थित थे और मल्लिभूषणका शायद स्वर्गवास हो चुका था।

(अपूर्ण।)

विविध विषय।

१—अधिवेशन सफल हुआ या असफल।

भारतवर्षीय दि० जैन महासभाके जिस अधिवेशनकी [illegible] बड़ी धूम थी और बहुत शोर था वह कानपुरमें गत १, २, ३ अप्रेल को हो गया। इस अधिवेशनकी जो रिपोर्ट जैनगजट, जैनमित्र और जैनप्रदीप आदि पत्रोंमें प्रकाशित हुई हैं, उन्हें हमने साद्यंत पढ़ा है और बाबू अजितप्रसादजी वकील, लखनऊका लिखा हुआ कच्चा चिट्ठा इस अङ्कमें अन्यत्र प्रकाशित ही है। इसमें सन्देह नहीं कि महासभाके सभापति श्रीमान् साहु सलेखचन्दजी और स्वागतकारिणी सभाके सभापति लाला रामस्वरूपजीके व्याख्यान समयानुकूल बहुत कुछ अच्छे हुए और उनमें कितनी ही बातें बड़े महत्वकी और कामकी कही गई थीं। परन्तु महासभामें उनपर विचार होकर किसी प्रस्तावका पास होना तो दूर रहा, वे सब्जेक्ट कमेटीमें प्रायः उठाईतक भी नहीं गईं और इसलिए ऐसी कामकी बातें महासभाके इस अधिवेशनमें एक प्रकारसे ऊँटका पाद ही रहीं! महासभाके जिस सङ्गठनकी अर्सेसे शिकायत चली जाती है, जिसके सम्बन्धमें जैनसिद्धान्तविद्यालय मुरैनाकी कमेटीने, महासभाके पत्रोंपर, अपना यह निश्चय प्रकट किया कि "महासभाका जबतक योग्य सङ्गठन न हो जाय तबतक उसकी अधीनता

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

करना उचित नहीं है,*" और जो संगठन ही उन्नति अवनतिका मूल होता है, उसपर भी कुछ ध्यान नहीं दिया गया और न उसकी महासभामें चर्चा ही उठाई गई। जैनमित्रसे मालूम होता है कि महासभामें अनेक प्रान्तोंकी उपस्थित जनता चार हज़ारसे ऊपर थी, और यह सब इसके अन्दोलनका फल है। परन्तु फण्डके लिए अपील किये जानेपर मुशकिलसे पन्द्रह सौ या सोलह सौ रुपयेसे† अधिकका चन्दा नहीं हो सका, जिसमें एक हज़ार रुपये केवल सभापति साहबके दिये हुए हैं। बाकी पाँच सौ छः सौ रुपये शेष जनतासे बहुत कुछ कोशिश और प्रेरणाके साथ वसूल किये गये! इस चन्देमें चार आनेका हिस्सा दूसरी चार संस्थाओंका भी था और इसलिए महासभाको अपनी इस अपीलसे ज्यादासे ज्यादा बारह सौ रुपयेकी ही प्राप्ति हुई है। इतनी भारी जनता और ऐसे ऐसे प्रतिष्ठित श्रीमानोंकी उपस्थितिमें एक भारतवर्षीय जैसी संस्थाको उसके धनिक-समाजसे इतनी तुच्छ रकमका प्राप्त होना, निःसन्देह बहुत ही खटकता है; और इससे पाठक इस बातका बहुत कुछ अनुभव कर सकते हैं कि महासभाके ऊपर समाजकी कितनी श्रद्धा और भक्ति है और उसे समाजपर अपना प्रभुत्व स्थापित करने—प्रभाव जमाने और उसके हृदयको अपने काबूमें लानेके लिए कितनी अधिक योग्यता और सुसङ्गठनकी ज़रूरत है। सभापति महोदयने ठीक ही कहा है कि 'महासभाके नामके अनुसार उसकी व्यापकता नहीं है और इसलिए यह नाम मात्रकी ही महासभा बनी हुई है।' अस्तु, इस चन्देका उल्लेख करते हुए ब्रह्मचारी शीतलप्रसाद जी, जैनमित्र अंक २१ में लिखते हैं कि—"सभाके कार्योंमें किसी महाशय द्वारा कठोर भाषण होनेके कारण दिलोंमें उत्साहकी कमी हो गई जिससे भी चन्दा बहुत कम हुआ।" और एक दूसरे स्थानपर आप यह भी सूचित करते हैं कि—"यदि महासभामें पधारे हुए पण्डित और बाबूदलमें पूर्ण विश्वास होता तो कई महत्वके काम हो जाते। पर अन्ध अविश्वासने बहुत सी बातोंका सुधार होते होते रोक दिया।" लाला ज्योतिप्रसादजी अपने 'जैनप्रदीप' में, पण्डितोंकी धींगाधींगी* और उनके अशिष्ट तथा कषायपूर्ण व्यवहारका बहुत कुछ उल्लेख करते हुए लिखते हैं कि—"अगर दरअसल यह प्रदर्शिनी न खोली जाती तो महासभाकी धींगाधागी और नाकामयाबीको देखकर आनेवाले भाइयोंको बहुत कुछ पश्चात्ताप करना पड़ता।" और बाबू अजितप्रसादजी वकील अपने कच्चे चिट्ठेमें यह लिखते ही हैं कि—"किसीको यह भी ज्ञात नहीं हुआ कि जैनसमाजसे अनेक प्रकार रुपया ख़र्च करनेकी स्वीकारता प्राप्त करनेके अतिरिक्त महासभाके इस अधिवेशनका और क्या आशय था।"

इन सब बातोंसे पाठक स्वयं समझ सकते हैं कि महासभाका यह अधिवेशन सफल हुआ या असफल। महासभाके प्रस्तावोंकी सूची देखनेसे मालूम होता है कि इस साल उसके द्वारा कोई भी ख़ास महत्वका प्रस्ताव पास नहीं हुआ। हमारी रायमें महासभाको यदि कुछ सफलता

---

* देखो जैनमित्र अंक २१ पृ० ३१८।

† जैनगजट पन्द्रह सौ और जैनमित्र सोलह सौ लिखता है।

* "जैनसमाजके ऊपर पण्डितोंकी धींगाधाँगीका हाल बखूबी रोशन हो गया और उनकी मनमानी कार्रवाइयोंका खूबही भण्डार फूट निकला।"

—जैनप्रदीप।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्राप्त हुई है तो वह इतनी ही है कि महासभा जिस रूपमें कानपुर आई थी वह उसी रूपमें सहीसलामत वहाँसे वापस चली गई उसमें कुछ परिवर्तन होने नहीं पाया और न सूरतकी काँग्रेस जैसा दृश्य ही उपस्थित हुआ। महासभाके इस अधिवेशनका जैसा कुछ शोर था, लोगोंकी जैसी कुछ आशाएँ इसपर लगी हुई थीं और इसका जैसा कुछ परिणाम निकला है, उसे देखते हुए कविका यह वाक्य याद आये बिना नहीं रहता कि—

"बहुत शोर सुनते थे पहलूमें दिलका।
जो चीरा तो एक क़तरए† खून निकला॥"

महासभा यदि जीना चाहती है और अच्छी तरहसे जीना चाहती है तो उसे देशकालानुसार कुछ उदार बनकर अपनी हालतको सुधारना और अपने सङ्गठनको ठीक बनाना चाहिए। नहीं तो भविष्यमें उसे और भी अधिक अधिक असफलताओंका सामना करना पड़ेगा।

२—महिला परिषद्।

इस परिषद्का वार्षिक अधिवेशन भी महासभाके अवसर पर कानपुरमें ता० २, ३ अप्रेलको हो गया। परिषद्के सभापतिका आसन श्रीमती पडिता चन्दाबाईजी आराने ग्रहण किया था। आपके छपे हुए भाषणकी एक कापी हमें प्राप्त हुई है जिसके देखनेसे मालूम हुआ कि भाषण अच्छा हुआ है और उसमें समयानुकूल कितनी ही बातें स्त्रीजातिके लिए अच्छी कही गई हैं। ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी सूचित करते हैं कि इस परिषद्ने कन्या महाविद्यालय और महिला उदासीन मन्दिरके स्थापना-सम्बन्धी दो उपयोगी प्रस्ताव पास किये हैं। अपील होने पर परिषद्के फण्डमें १५०८॥) की और श्राविकाश्रम बम्बईके फण्डमें २२६१) रुपये की आमदनी हुई। श्राविकाश्रमके ध्रौव्य फण्डमें श्रीमती पण्डिता चन्दाबाई ने १००१) और श्रीमती कंकुबाई शोलापुरने १००१) रुपये प्रदान किये। जैनस्त्रीसमाजके इस बढ़ते हुए उत्साहको देखकर हमें बहुत प्रसन्नता होती है और हम उसके भावी उत्कर्षके लिए हृदयसे भावना करते हैं। हमारी रायमें स्त्रीजाति स्वावलम्बनके द्वारा ही अपना उद्धार कर सकेगी और उसके उद्धारपर ही देश, धर्म तथा समाजका उद्धार निर्भर है।

३-जैनहितैषीसे प्रेम।

कोल्हापुरके एक पण्डित महाशय जैनहितैषीसे बड़ा प्रेम रखते हैं। हालमें आपने इस पत्रके सहायतार्थ ३० रुपये भेजे हैं और इस तरहपर अपने प्रेमका विशेष परिचय दिया है। हम आपकी इस उदारता और गुणग्राहकताका हृदयसे अभिनन्दन करते हैं।

४-आश्चर्यकी बात।

हमारे पाठकोंको यह जानकर आश्चर्य होगा कि समाजमें सत्योदय, जातिप्रबोधक और जैनहितैषीके बहिष्कारकी जो चर्चा चल रही थी वह कानपुरमें जाकर कुछ शान्त हो गई है। यद्यपि महासभाके सभापति श्रीमान् साहुसलेखचन्द्रजीने जैनहितैषीको बहिष्कारके योग्य न बतला कर सिर्फ दो पत्रोंको ही बहिष्कारके योग्य बतलाया था और शास्त्र-परिषद्के सभापति पं० लालारामने तीनोंके ही बहिष्कारकी प्रेरणा की थी, परन्तु बहिष्कारकी ये सब बातें सभापतियोंके भाषणों तक ही रहीं और वह भी शायद किसी खास गरजसे। महासभाकी सब्जेक्ट कमेटीमें इस विषयकी चर्चा नहीं उठाई गई और न महासभा तथा शास्त्र-परिषद्के द्वारा इन पत्रोंके विरुद्ध कोई

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रस्ताव ही पास किया गया। कलकत्तेके षड्यन्त्रको देखते हुए और उसी वक्तसे महासभाके द्वारा भी उक्त प्रकारके प्रस्तावको पास करानेके इरादोंको सुनते हुए, यह कभी आशा नहीं होती थी कि महासभाकी सब्जेक्ट कमेटीमें जहाँ शास्त्रिमण्डलका पूरा जोर था, इन पत्रोंके बहिष्कारकी चर्चा तक न उठेगी और खासकर शास्त्रिपरिषद्के द्वारा इनके बहिष्कारका कोई प्रस्ताव भी पास न किया जायगा और इसलिए ऐसा होना निःसन्देह एक आश्चर्यकी बात जरूर है। अवश्य ही इसमें कोई गुप्त रहस्य है। शायद यही सोचा गया हो कि जब बहिष्कारके विधाता पण्डित लोग ही इन पत्रोंको पढ़ने, इनसे लाभ उठाने और इनके लेखों पर विचार प्रकट करनेकी अपनी प्रबल इच्छाओंका संवरण नहीं कर सकते और न स्वयं अपने विषयमें प्रामाणिक रह सकते हैं—उन्हें वास्तवमें बहिष्कार स्वीकार ही नहीं—तब परोपदेश कुशल बनकर दूसरोंको उनके पढ़नेसे रोकनेका उन्हें अधिकार ही क्या है और दूसरे लोग एक तरफ लेखोंको माननेके लिए बाध्य भी कैसे किये जा सकते हैं। सच है ऐसे लोगोंके वचनोंका जनतापर कोई असर नहीं होता जो अपने कथनपर स्वयं ही अमल न करते हों।

५—समाजका दुर्भाग्य।

अभी कुमार देवेंद्रप्रसादजीके वियोगसे हृदय संतप्त ही हो रहा था और शोकाश्रु सूखने भी नहीं पाये थे कि आज हम दूसरा हृदयविदारक दुःसमाचार सुन रहे हैं! हमें दुःख और शोकके साथ लिखना पड़ता है कि आज श्रीऋषभब्रह्मचर्याश्रमके संस्थापक, उसके लिए अपना तन, मन, धन अर्पण करनेवाले और उसके बच्चोंको माताकी तरह प्रेमसे पालनेवाले, समाजके निःस्वार्थ सेवक और उस सेवाके लिए अपनी नौकरीको भी छोड़ देनेवाले वीर पुरुष ला० गेंदनलालजी आज इस संसारमें नहीं हैं!! आप कुछ अर्सेसे श्रीसम्मेद शिखरजी गये हुए थे और वहाँ भीलोंसे मद्यादिक छुड़ाकर उन्हें सन्मार्गमें लगा रहे थे। सुनते हैं कि आपने कई हजार भीलोंको ठीक किया था और आप उनकी स्त्रियोंमें चर्खेका प्रचार कराकर उनके जीवनको सुधारना चाहते थे। इस सेवा-कार्यको करते हुए रोगपीड़ित हो जानेके कारण आप वहाँसे वापस लौट रहे थे। रास्तेमें आपकी तबियत कुछ ज्यादा खराब मालूम हुई और इसलिए आप रायबरेली उतर गये जहाँ कि आपकी लड़की मौजूद थी। वहीं पर गत १६ अप्रैलको आपका शरीर एकाएक छूट गया! आपके हृदयमें जातिसेवाका बड़ा प्रेम था और आप बड़े ही परोपकारी और उत्साही पुरुष थे। ऐसे परोपकारी और उत्साही पुरुषका एकाएक समाजसे उठ जाना निःसन्देह समाजका बड़ा ही दुर्भाग्य है! मृत्युके समय आपके दोनों पुत्रोंमेंसे कोई भी पास नहीं था। एक पुत्र बाबू दीपचन्दजी बी० ए० सहारनपुरमें वकालत करते हैं और दूसरे पुत्र बड़ोदाके कलाभवनमें शिक्षा पा रहे हैं। हम आपके कुटुम्बीजनोंके इस दुःखमें समवेदना प्रकट करते हुए हृदयसे इस बातकी भावना करते हैं कि ला० गेंदनलालजीकी आत्माको सद्गतिकी प्राप्ति हो।

पुस्तक-परिचय।

जैनदर्शन—मूल लेखक स्व० मुनि श्रीन्यायविजयजी। अनुवादक, कृष्णलाल

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वर्मा। प्रकाशक, श्रीजैन सरस्वती भवन, अहमदाबाद। पृष्ठ-संख्या १५० के करीब। मूल्य, दस आने।

यह इस नामकी गुजराती पुस्तकका हिन्दी अनुवाद है। मूल पुस्तक भी इस समय हमारे सामने मौजूद है। उसे श्री-यशोविजय जैनग्रन्थमालाके व्यवस्थापक मण्डलने भावनगरसे प्रकाशित किया है। मूल्य पुस्तक पर लिखा नहीं। हाँ, उसकी एक हजार प्रतियाँ दोसी त्रिभुवनदास ताराचन्दकी ओरसे बिना मूल्य वितरण की गई हैं।

इस पुस्तकमें जीवादि नवपदार्थ, पंचास्तिकाय, षड्द्रव्य, सम्यग्दर्शनादि-मोक्षमार्ग, गुणस्थान, अध्यात्म, जैनआचार, न्यायपरिभाषा, स्याद्वाद, सप्तभंगी, नय और जैन दृष्टिकी उदारता, इतने विषयोंका सामान्य रूपसे संक्षिप्त परिचय दिया गया है। पुस्तक आम तौरपर अच्छी और उपयोगी है। इसके 'जैनआचार' प्रकरणमें अजैन ग्रन्थोंसे जो तुलनात्मक वाक्य दिये हैं, उनसे पुस्तककी उपयोगिता अनेक अंशोंमें बढ़ गई है। परन्तु ऐसे कितने ही वाक्योंके सम्बन्धमें यह त्रुटि भी पाई जाती है कि पुस्तकमें उनका पूरा पता नहीं दिया। यह नहीं लिखा कि वे उल्लिखित ग्रन्थके कौनसे अध्यायमें और किस पद्य नम्बर पर स्थित हैं। अच्छा होता, यदि ऐसा कर दिया जाता। हमारी रायमें अब भी मुनि न्यायविजयजीको ऐसे श्लोकोंके पूरे पतेका एक परिशिष्ट पुस्तकमें लगा देना चाहिए और या दूसरे संस्करणमें ऐसे पद्योंके नीचे ही उनका पूरा पता दे देना चाहिए। जल छानकर पीनेके सम्बन्धमें जो श्लोक उत्तरमीमांसा और महाभारतके नामसे, बिना पतेके, उद्धृत किये गये हैं उनमेंसे महाभारतवाले श्लोक इस प्रकार हैं—

"विंशत्यंगुलमानंतु त्रिंशदंगुलमायतम्।
तद्वस्त्रं द्विगुणीकृत्य गालयित्वा पिबेज्जलम्॥
तस्मिन वस्त्रेस्थितान् जीवान्स्थापयेज्जलमध्यत
एवं कृत्वा पिबेत्तोयं स याति परमां गतिम्॥

इन श्लोकोंमें यह बतलाया है कि "२० अंगुल चौड़े और ३० अंगुल लम्बे [illegible] करके उसमें पानी छानकर [illegible] और उस वस्त्रमें स्थित जीवोंको [illegible] स्थापित कर देना चाहिए [illegible] छानकर जो पीता है [illegible] होता है।" यह बिल [illegible] और इसमें जैन [illegible] और दयातत्व भरा हुआ है [illegible] महाभारतके किस अध्याय [illegible] हैं। पुस्तकमें [illegible] हरिभद्र-सूरिके नामसे [illegible] किया गया है—

पया व्रतो न दध्यत्ति न पयोऽत्ति दधिव्रतः
अगोरस व्रतो नोभे तस्माद् वस्तु त्रयात्मकम्॥

यह पद्य वास्तवमें स्वामिसमन्तभद्रके आप्तमीमांसा ग्रन्थका है और वहाँ 'वस्तु' की जगह 'तत्वं' पद दिया हुआ है। हरिभद्रसूरिने अपने 'शास्त्रवार्तासमुच्चय' ग्रन्थमें इसे उद्धृत किया था और "अन्येत्वाहुः" इस वाक्यके द्वारा अपने ऐसा करनेको सूचित भी कर दिया था। संवत् १९६४ में, भावनगरसे हरिभद्रसूरि कृत ग्रन्थमालामें जो ग्रन्थ प्रकाशित हुआ उसमें भी 'वस्तु' की जगह 'तत्वं' पद ही दिया हुआ है। मुनि न्यायविजयजीने 'आप्तमीमांसा' को ज़रूर देखा होगा। ऐसी हालतमें उन्हें इस पद्यको उसी रूपमें स्वामी समन्तभद्र अथवा आप्तमीमांसाके नामसे ही उद्धृत करना चाहिए था। अस्तु; हिन्दी और गुजरातीकी दोनों पुस्तकें छपाई, सफाई तथा कागजकी दृष्टिसे भी अच्छी हैं और पढ़ने तथा संग्रह किये जानेके योग्य हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भारतके प्राचीन राजवंश।

हिन्दीमें इतिहासका एक अपूर्व ग्रन्थ। इस देशमें पहले जो अनेक वंशोंके बड़े बड़े प्रतापी, दानी और विद्याव्यवसनी राजा महाराज हो गये हैं उनके सच्चे इतिहास हम लोग बिलकुल नहीं जानते। बहुतोंके विषयमें हमने तो झूठी, ऊटपटाँग किम्वदन्तियाँ सुन रक्खी हैं और बहुतोंको हम भूल ही गये हैं। इस ग्रन्थमें क्षत्रपवंश, हैहयवंश (कलचुरि) परमारवंश (जिसमें राजा भोज, मुंज, सिन्धुल आदि हुए हैं), चौहानवंश (जिसमें प्रसिद्ध महाराज पृथ्वीराज हुए हैं), सेनवंश और पालवंश तथा इन वंशोंकी प्रायः सभी शाखाओंके राजाओंका सिलसिलेवार और सच्चा इतिहास प्रमाणोंसहित संग्रह किया गया है। शिलालेखों, ताम्रपत्रों, ग्रन्थप्रशस्तियों, फारसी-अरबीकी तवारीखों तथा अन्य अनेक साधनोंसे बड़े ही परिश्रमपूर्वक यह ग्रन्थ रचा गया है। प्रत्येक इतिहासप्रेमीको इसकी एक एक प्रति मँगाकर रखनी चाहिए। इसमें अनेक जैन विद्वानों तथा जैन धर्मप्रेमी राजाओंका भी उल्लेख है। लगभग ४०० पृष्ठोंका कपड़ेकी जिल्द सहित ग्रन्थ है। मूल्य ३) रु०। आगेके भागोंमें गुप्त, राष्ट्रकूट आदि वंशोंके इतिहास निकलेंगे।

नकली और असली धर्मात्मा।

श्रीयुत बाबू सूरजभानुजी वकीलका लिखा हुआ सर्वसाधारणोपयोगी सरल उपन्यास। ढोंगियोंकी बड़ी पोल खोली गई है। मूल्य ॥)

नया सूचीपत्र।

उत्तमोत्तम हिन्दी पुस्तकोंका ४२ पृष्ठोंका नया सूचीपत्र छपकर तैयार है। पुस्तक-प्रेमियोंको इसकी एक कापी मँगा कर रखनी चाहिए। मैनेजर,

हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय,
हीराबाग, पो० गिरगाँव, बम्बई।

उत्तमोत्तम जैन ग्रन्थ।

नीचे लिखी आलोचनात्मक पुस्तकें विचारशीलोंको अवश्य पढ़नी चाहियें। साधारण बुद्धिके गतानुगतिक लोग इन्हें न मँगावें।

१ ग्रंथपरीक्षा प्रथम भाग। इसमें कुन्दकुन्द श्रावकाचार, उमास्वाति-श्रावकाचार और जिनसेन त्रिवर्णाचार इन तीन ग्रन्थोंकी समालोचना है। अनेक प्रमाणोंसे सिद्ध किया है कि ये असली जैनग्रन्थ नहीं हैं—भेषियोंके बनाये हुए हैं। मूल्य ।=)

२ ग्रंथपरीक्षा द्वितीय भाग। यह भद्रबाहुसंहिता नामक ग्रन्थकी विस्तृत समालोचना है। इसमें बतलाया है कि यह परमपूज्य भद्रबाहु श्रुतकेवलीका बनाया हुआ ग्रन्थ नहीं है, किन्तु ग्वालियरके किसी धूर्त भट्टारकने १६ १७ वीं शताब्दिमें इस जाली ग्रन्थको उनके नामसे बनाया है और इसमें जैनधर्मके विरुद्ध सैंकड़ों बातें लिखी गई हैं। इन दोनों पुस्तकोंके लेखक श्रीयुक्त बाबू जुगुलकिशोरजी मुख्तार हैं। मूल्य ।)

३ दर्शनसार। आचार्य देवसेनका मूल प्राकृत ग्रन्थ, संस्कृतच्छाया, हिन्दी अनुवाद और विस्तृत विवेचना। इतिहासका एक महत्वका ग्रन्थ है। इसमें श्वेताम्बर, यापनीय, काष्ठासंघ; माथुरसंघ, द्राविड़संघ आजीवक (अज्ञानमत) और वैनेयिक आदि अनेक मतोंकी उत्पत्ति और उनका स्वरूप बतलाया गया है। बड़ी खोज और परिश्रमसे इसकी रचना हुई है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आत्मानुशासन ।

भगवान् गुणभद्राचार्य्यका बनाया हुआ यह ग्रन्थ प्रत्येक जैनीके स्वाध्याय करने योग्य है। इसमें जैनधर्मके असली उद्देश्य शान्तिसुखकी ओर आकर्षित किया गया है। बहुत ही सुन्दर रचना है। आजकलकी शुद्ध हिन्दीमें हमने न्यायतीर्थ न्यायशास्त्री पं० वंशीधरजी शास्त्रीसे इसकी टीका लिखवाई है और मूलसहित छपवाया है। जो जैनधर्मके जाननेकी इच्छा रखते हैं, उन अजैन मित्रोंको भेंटमें देने योग्य भी यह ग्रन्थ है। मूल्य २)

षट्प्राभृतादिसंग्रह ।

यह माणिकचन्द ग्रन्थमालाका १७वाँ ग्रन्थ है। इसमें आचार्य कुन्दकुन्दके ८ पाहुड़ और रयणसार, द्वादशानुप्रेक्षा ये दस ग्रन्थ छपे हैं। पहलेके ६ पाहुड़ोंकी आचार्य श्रुतसागरकृत संस्कृत टीका भी है, जो बहुत विस्तृत है। अन्य ग्रन्थ मूल और संस्कृत छाया सहित छपे हैं। प्रत्येक भंडारमें इसकी एक एक प्रति रहनी चाहिए। मूल्य लागत मात्र तीन रुपया।

नियमसार ।

भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यका यह बिलकुल ही अप्रसिद्ध ग्रन्थ है। लोग इसका नाम भी नहीं जानते थे। बड़ी मुश्किलसे प्राप्त करके यह छपाया गया है। नाटक समयसार आदिके समान ही इसका भी प्रचार होना चाहिए। मूल प्राकृत, संस्कृतच्छाया, आचार्य पद्मप्रभमलधारि देवकी संस्कृत टीका और श्रीयुत शीतलप्रसादजी ब्रह्मचारीकृत सरल भाषाटीकासहित यह छपाया गया है। अध्यात्मप्रेमियोंको अवश्य स्वाध्याय करना चाहिए। मूल्य २) दो रु०।

पार्श्वपुराण भाषा ।

कविवर भूधरदासजीका यह अपूर्व ग्रन्थ दूसरी बार छपाया गया है। इसकी कविता बड़ी ही मनोहारिणी है। जैनियोंके कथाग्रन्थोंमें इससे अच्छी और सुन्दर कविता आपको और कहीं न मिलेगी। विद्यार्थियोंके लिये भी बहुत उपयोगी है। शास्त्रसभाओंमें बाँचनेके योग्य है। बहुत सुन्दरतासे छपा है। मूल्य सिर्फ १) रु०।

कथामें जैनसिद्धान्त ।

एक मनोरंजक कथाके द्वारा जैनधर्मकी गूढ़ कर्म-फिलासफीको सरलतासे समझना हो और एक बढ़िया काव्यका आनन्द लेना हो तो आचार्य सिद्धर्षिके बनाये हुए 'उपमितिभवप्रपचाकथा' नामक संस्कृत ग्रन्थके हिन्दी अनुवादको अवश्य पढ़िये। अनुवादक श्रीयुत नाथूराम प्रेमी। मूल्य प्रथम भागका ।॥) और द्वितीय भागका ।-) जैन साहित्यमें अपने ढंगका यही एक ग्रन्थ है।

संस्कृत ग्रंथ ।

१ जीवन्धरचम्पू-कवि हरिचन्द्रकृत। १।)
२ गद्यचिन्तामणि-वादीभसिंहकृत। २)
३ जीवन्धरचरित-गुणभद्राचार्यकृत। १)
४ क्षत्रचूड़ामणि-वादीभसिंहकृत। मू० १)
५ यशोधरचरित-वादिराजकृत। मू० ॥)

चरचा समाधान । पं० भूधरमिश्रकृत। भाषाका नया ग्रन्थ। हालहीमें छपा है। मूल्य २॥-)

जैन ग्रन्थोंका सूचीपत्र

अभी हाल में ही छपकर तैयार हुआ है। मिलनेवाले तमाम ग्रन्थोंकी सूची है। जिन सज्जनोंको चाहिए वे एक कार्ड लिखकर मँगा लें।

मैनेजर—
जैन-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्य्यालय,
हीराबाग, पो० गिरगाँव, बम्बई।

Printed & Published by G.K. Gurjar at Sri Lakshmi Narayan Press, Jatanbar, Benares City, for the Proprietor Nathuram Premi of Bombay 114-21.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org